CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज—६७

कुमारसम्भवम्

सान्वय-'सुधा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

I

व्याख्याकारः

पं० परमेश्वरदीन पाण्डेयः

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

६७

०००००

महाकविकालिदासविरचितं

कुमारसम्भवम्

'सुधा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

पं० परमेश्वरदीन पाण्डेयः

एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी), साहित्याचार्यः, साहित्यरत्नम्

(प्रथमः सर्गः)

SRI VIDYA BHARATHI
BOOK CENTRE
Bharathi Street,
SRINGERI - 577 139.

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९९८

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि० सं० २०५५
मूल्य : रु० १२-००

© कृष्णदास अकादमी

के० ३७/११८, गोपाल मंदिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ३३५०२०

अपरञ्च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मंदिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन { आफिस : ३३३४५८
निवास : ३३४०३२, ३३५०२०

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राक्कथन

संस्कृत-साहित्येतिहास में कविकुलगुरु कालिदास का मूर्धन्य स्थान है। इनकी सर्वातिशायिनी अद्भुत विलक्षण प्रतिभा ने समस्त विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया है। इनकी उपलब्ध ८ रचनाओं में 'कुमारसम्भव' महाकाव्य प्रमुख स्थान रखता है। यह १७ सर्गों का महाकाव्य है जिसमें प्रधानतया भगवान् शिव तथा पार्वती के विवाह एवं कुमार कार्तिकेय के जन्म का सहेतुक विस्तारपूर्वक वर्णन है। साहित्यिक दृष्टि से कुमारसम्भव अत्यन्त सुन्दर महाकाव्य है, अतएव इसका पठन-पाठन भी संस्कृत-समाज में अतीव समादर के साथ किया जाता है। महाकाव्य की उपयोगिता को ही देखकर विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्नातकस्तरीय संस्कृत परीक्षाओं में इसे पाठ्य-ग्रंथ के रूप में निर्धारित किया गया है।

यद्यपि कुमार-सम्भव की अनेक संस्कृत-व्याख्यायें उपलब्ध हैं, किन्तु छात्रों को सर्वथा सन्तुष्ट कर पाने के लिए 'सुधा-व्याख्या' एक नूतन प्रयास है। इसमें संक्षेप में ही एकत्र उन सब विषयों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है जिनके लिए परीक्षार्थी इतस्ततः भटकते रहते थे।

सुधा-व्याख्यायुक्त कुमारसम्भव की रचना में जिन महानुभावों की कृतियों से सहयोग लिया गया है हम उन सबके हृदय से आभारी हैं। इस कार्य में मेरे कनिष्ठात्मज आयुष्यमान् अवनिकुमार पाण्डेय एम०ए० (अंग्रेजी), साहित्याचार्य ने भी पर्याप्त प्रयास किया है, अतः वह भी धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में हम सहृदय पाठकों के सुझावों की अपेक्षा करते हैं जिससे इसके आगामी संस्करण को और भी अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

नाहिल, शाहजहाँपुर
वि० सं० २०४२

विदुषां वशंवदः—
परमेश्वरदीन पाण्डेयः

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रस्तावना

संस्कृत-साहित्य के काव्य क्षेत्र में यद्यपि माघ-भवभूति-भारवि-श्रीहर्ष-सुबन्धु-बाणभट्ट तथा दण्डी प्रभृति अनेक विद्वान् आते हैं, परन्तु कविकुल-गुरु कालिदास का इन सब में मूर्धन्य स्थान है। कविशिरोमणि की कविता-कामिनी के माधुर्य पर भारतवर्ष ही नहीं, अपितु समस्त विश्व का विद्वत्स-मुदाय आश्चर्यचकित है। इनकी सर्वतोमुखी काव्य-प्रतिभा ने एक अभिनव कल्पना को प्रश्रय देकर संस्कृत-साहित्य को श्रेष्ठता के उच्चतम शिखर पर ले जाकर रख दिया है।

किन्तु पाणिनि प्रभृति विद्वानों के समान महाकवि कालिदास ने भी अपने जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कहीं पर कुछ भी नहीं लिखा है। इनका काल-निर्धारण करने के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार की कल्पनाएँ की हैं। प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार कालिदास को बाल्यकाल में 'मूर्ख' माना जाता है। पंडितों ने किसी राजा की विदुषी कन्या विद्योत्तमा से शास्त्रार्थ में पराजित होकर—खिन्न उसका विवाह धोखे से मूर्ख कालिदास के साथ करा दिया, परन्तु विद्योत्तमा को जब अपने पति की मूर्खता का आभास हुआ तो उसने इन्हें घर से बाहर निकाल दिया। अपमानित होकर कालिदास ने कालीदेवी को कठोर उपासना कर विद्वान् होने का वरदान प्राप्त किया। तदनन्तर कालिदास पत्नी से प्रतिशोध लेने की भावना से विद्योत्तमा के घर वापस आये तथा 'अनावृतकपाटं द्वारं देहि' कहकर विद्योत्तमा से दरवाजा खोलने के लिए कहा। विद्योत्तमा द्वारा 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' प्रश्न किये जाने पर महाकवि ने प्रत्येक शब्द पर एक-एक महाकाव्य की रचना की। इनमें 'अस्ति' पर 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा' इत्यादि से 'कुमारसम्भव', 'कश्चित्' शब्द पर 'कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा' से 'मेघदूत', 'वाग्' शब्द पर 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' इत्यादि से रघुवंश कथा-काव्यों की रचनाएँ कीं। कुछ

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्वान् महाकवि को कश्मीर, कुछ विदर्भ तथा अन्य बंगाल एवम् उज्जयिनी का निवासी मानते हैं।

कालिदास का काल

महाकवि के काल-निर्धारण के सम्बन्ध में प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वान् एकमत नहीं हैं। आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर विभिन्न विद्वान् कालिदास को ई० पू० प्रथम शताब्दी से लेकर छठी ई० शताब्दी तक मानते हैं। तदनुसार कालिदास विक्रम या महाराज विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे—

'धन्वन्तरि-क्षपणकामरसिंह-शंकु-वेतालभट्ट-घटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य'॥

इस कल्पना के आधार पर कतिपय भारतीय विद्वानों ने ई० पू० प्रथम शताब्दी में उज्जयिनी में विक्रमादित्य का राजा होना स्वीकार किया है। यह बड़ा ही उदार, पराक्रमी तथा विद्वानों का समादर करने वाला था। इसकी पुष्टि गाथासप्तशती तथा जैन-ग्रन्थों से होती है, किन्तु पाश्चात्य विद्वान् 'विक्रमादित्य' नामक किसी राजा का ई० पू० प्रथम शताब्दी में होने से सहमत नहीं है। वे कालिदास को विक्रमादित्य उपाधिधारी गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त सम्राट् का समकालिक मानते हैं।

डॉ० कीथ ने कालिदास के ग्रन्थों का अश्वघोष के ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन करते हुए अश्वघोष का परवर्ती कवि माना है। इनकी प्रयुक्त प्राकृत भाषा अश्वघोष तथा भास कवि से नवीन है। कालिदास के ग्रन्थों से स्पष्ट प्रकट होता है कि इनके समय में देश समृद्धिशाली तथा सुशासित था। वैदिक ब्राह्मणधर्म का बोलबाला था। यह समय गुप्त काल से प्राचीन नहीं हो सकता है। अतः इनका समय ई० अ० चतुर्थ शताब्दी माना जाना चाहिये।

श्री के० पी० पाठक कालिदास को पञ्चम शताब्दी में होना मानते हैं। उन्होंने रघुवंश के दो श्लोकों का उद्धरण देते हुए हूण जाति के समय में ही महाकवि का होना स्वीकार किया है। यह हूण जाति आमू (आक्शस) नदी के तट पर पंचम शती के आरम्भ में ही बस चुकी थी। जिसका गुप्तवंशीय राजा स्कन्दगुप्त से युद्ध हुआ था। डॉ० मैकलानल्ड ने भी उसी का समर्थन

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया है। वैसे रघुवंश चतुर्थ सर्ग में वर्णित 'वक्षु' शब्द का पाठान्तर अधिकांश ग्रन्थों में 'सिन्धु' मिलता है। उससे कालिदास का समय ई० अ० ६०० होता है, क्योंकि यशोधर्मन् से पराजित होकर मिहिर कुल ने ई० अ० छठी शताब्दी में कश्मीर में हूण राज्य की स्थापना की थी।

कालिदास के ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि वह ग्रीक ज्योतिष से परिचित थे। इसका प्रचार भारत में सर्वप्रथम आर्यभट्ट ने किया, जिनका समय ई, अ. पञ्चम शताब्दी का अन्तिम भाग है। उसके अनुसार कालिदास का समय ई० अ० षष्ठ शतक होता है। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नामक नाटक में अग्निमित्र को नायक बनाया है। अग्निमित्र पुष्यमित्रशुंग का लड़का था। पुष्यमित्र ई० पू० द्वितीय शताब्दी में हुआ। बाणभट्ट ने अपनी कादम्बरी की प्रस्तावना में कालिदास का नामोल्लेख किया है। इनका समय ई० अ० सप्तम शतक का पूर्वार्द्ध माना जाता है। इस प्रकार कालिदास का समय ई० पू० द्वितीय शताब्दी से ई० अ० सप्तम शताब्दी के मध्य निर्धारित किया जाता है।

मल्लिनाथ ने कालिदास के मेघदूत काव्य के चौदहवें श्लोक के दो अर्थ किये हैं। इनके मतानुसार मेघदूत में प्रयुक्त 'दिङ्नाग' तथा 'निचुल' शब्द क्रमशः बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग तथा कालिदास के सतीर्थ्य महाकवि निचुल का परामर्श करते हैं। तदनुसार कतिपय विद्वान् कालिदास के समकालिक दिङ्नाग के गुरु सुबन्धु का कार्यकाल ई० अ० षष्ठ शताब्दी मानते हैं। अतः कालिदास का भी समय षष्ठ शताब्दी होना चाहिये। किन्तु वास्तव में सुबन्धु ई० अ० ४०० में हुए, जिनके ग्रन्थों का अनुवाद ई० अ० चतुर्थ शताब्दी के अन्तिम चतुर्थ भाग से पञ्चम शताब्दी के आरम्भ तक हुआ।

उपर्युक्त सभी मतों की समीक्षा करने पर कालिदास का समय मालवा में राज्य करने वाले दानशील राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक होने के कारण ईस्वीय प्रथम शताब्दी पूर्व ही निर्धारित करना अधिक उपयुक्त है। क्योंकि इनके ग्रन्थों से तत्कालीन भारत की धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था का पता चलता है अर्थात् कालिदास ऐसे समय में हुए जिस समय

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोग बौद्धधर्म से प्रभावित थे। अतः लोग ब्राह्मण धर्म की कठोरताओं तथा हिन्दू देवी-देवताओं के सम्बन्ध में श्रद्धारहित होते जा रहे थे। ईसा की प्रथम शताब्दी में हुए महाराज कनिष्क की सभा के महापण्डित बौद्ध कवि अश्वघोष के 'बुद्धचरित' महाकाव्य पर कालिदास की काव्यरचना शैली की स्पष्ट छाप झलकती है। रघुवंश के सप्तम सर्ग में वर्णित इन्दुमतीस्वयंवर की भाँति अश्वघोष ने भी अपने बुद्धचरित के तृतीय सर्ग में शुद्धोदन की सुसमृद्ध नगरी में प्रथम बार प्रवेश करते हुए राजकुमार सिद्धार्थ को उत्कण्ठित होकर देखने के लिए सुन्दरियों का वर्णन किया है। इन दोनों महाकवियों की रचनाओं में अत्यन्त समानता तथा अश्वघोष द्वारा कालिदास की रचनाओं का अनुसरण करना सिद्ध होता है, अतएव प्रथम शताब्दी में हुए महाकवि अश्वघोष से पूर्व ई० पू० प्रथम शताब्दी ही कालिदास का समय निर्धारित किया जा सकता है।

कालिदास का काव्यसौष्ठव

कविकुलगुरु कालिदास की कविता में प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का सन्निवेश, उपमा प्रभृति अलङ्कारों की रमणीयता तथा छन्दों की अनुपम छटा बरबस पाठक को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। व्यङ्ग्यार्थ-प्रतिपादन की विलक्षणता रसप्रकर्ष का प्रकाशक तथा ध्वनिकाव्य का उत्तम गुण 'व्यञ्जना व्यापार' इनकी कविता का स्वाभाविक गुण है। इन्होंने अपनी कविता में मानव-जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का निरीक्षण किया है। ये उपमा-वर्णन में बेजोड़ कवि माने गये हैं। अतः इनके सम्बन्ध में आलोचकों ने ठीक ही कहा है 'उपमा कालिदासस्य' इति। कालिदास की वाणी के रहस्य को केवल तीन व्यक्ति ही समझ सके हैं—या तो ब्रह्माजी या सरस्वती देवी या स्वयं कवि कालिदास, अन्य कोई नहीं समझ पाया है—

'कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः'॥

कालिदास वैदिक धर्म के अनुयायी थे। वर्णाश्रम-व्यवस्था पर इन्हें अटूट विश्वास था। पुरुषार्थचतुष्टय में विश्वास रखते हुए धर्म पर इनकी परम

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आस्था थी। ये व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्त्व देते थे। यह आशावादी कवि थे—निराशावादी नहीं।

कालिदास की रचनाएँ

इनकी रचनाएँ कुल आठ मानी जाती हैं, जिनमें—१. रघुवंश, २. कुमार-सम्भव—दो महाकाव्य, ३. मेघदूत खण्डकाव्य तथा ४. अभिज्ञानशाकुन्तल, ५. मालविकाग्निमित्र, ६. विक्रमोर्वशीय, ७. ऋतुसंहार एवं ८ श्रुतबोध हैं। इनमें अभिज्ञानशाकुन्तल का अनुवाद संसार की लगभग समस्त उन्नत भाषाओं में किया जा चुका है। इनकी रचनाएँ शृङ्गाररस से ओतप्रोत हैं। मेघदूत खण्डकाव्य विप्रलम्भशृङ्गार का अनुपम काव्य है। कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग का रति-विलाप तथा रघुवंश के अष्टम सर्ग का अजविलाप करुण रस के मर्मस्पर्शी उदाहरण हैं। ये प्रकृति के कोमल स्वरूप के उपासक कवि थे। इनकी कविता में वस्तुव्यंजना तथा अलंकार-योजना के मनोरम उदाहरण देखने को मिलते हैं।

कुमारसम्भव—यह कालिदास का १७ सर्गों में लिखा महाकाव्य है। इसमें शिव-पार्वती का विवाह तथा स्वामी कार्तिकेय के जन्म की कथा वर्णित है। (कुमार) कार्तिकेय के जन्म के कारण प्रकृत ग्रन्थ का नाम भी 'कुमार-सम्भव' रखा गया है। इसकी कथा महाभारत, ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, कालिकापुराण तथा शिवपुराण में मिलती है। भाषा, भाव-कल्पना, अर्थ-सौन्दर्य एवं काव्य-शैली के आधार पर कुछ विद्वान् केवल प्रारम्भ से ८ सर्ग तक ही कालिदास द्वारा रचित मानते हैं। शेष सर्गों को अन्य-अन्य कवियों द्वारा रचित मानते हैं, क्योंकि केवल इन्हीं ८ सर्गों पर मल्लिनाथ की टीका मिलती है तथा अलंकार-ग्रन्थों में भी उदाहरण इन्हीं सर्गों से दिए गये हैं। डा० जैकोबी के मत कुमारसम्भव के सर्ग ९ से १७ तक की रचना महाराष्ट्र के किसी अन्य कवि द्वारा की गई है। सम्भव है अष्टम सर्ग में वर्णित-शिव-पार्वती-सम्भोग की समीक्षकों ने कालिदास के समय कटु आलोचना की हो तथा इससे खिन्न होकर कालिदास ने कुमारसम्भव की आगे रचना करना छोड़ दिया हो अथवा अष्टम सर्ग तक पहुँचते-पहुँचते कालिदास का स्वर्गवास हो गया हो। इसमें शृङ्गार रस, वैदर्भी रीति तथा प्रसाद गुण प्रमुख रूप से पाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कथासार

(प्रथम सर्ग)

कवि भारतवर्ष की उत्तर दिशा में नगाधिराज हिमालय के वर्णन से कुमारसम्भव का आरम्भ करता हुआ उसे अप्सराओं के विलास के अलंकरणों का सम्पादन करने वाली तथा मेघ के खण्डों में रंग का संक्रमण करने वाली धातुमत्ता को असमय में प्राप्त संध्या के समान शिखरों से धारण करता बताता है। हिमालय पर्वत पर विद्याधरसुन्दरियाँ गजबिन्दु के समान लाल भोजपत्र पर धातुरस से अपने प्रियतमों को सन्देश लिख कर प्रेमपत्र भेजती हैं, उस हिमालय पर हाथी गण्डस्थल की खुजली मिटाने के लिए देवदारु वृक्षों को रगड़ कर वृक्षों से दूध टपका कर चारों ओर सुगन्ध फैलाते हैं। हिमालय दिन में भयभीत उल्लू की भाँति गुफाओं में छिपे हुए अन्धकार का सूर्य से संरक्षण करता है। ब्रह्माजी ने स्वयं हिमालय को यज्ञ-साधन द्रव्यों की उत्पत्ति का कारण तथा पृथ्वी को धारण करने के कारण पर्वतों का स्वामी माना है। दक्षसुता सतीदेवी ने पिता द्वारा किये गये अपमान से प्रेरित होकर योगबल से देहत्याग कर हिमालयपत्नी मेना में पुनर्जन्म लिया। पर्वतराज-पुत्री होने के कारण वह पार्वती कहलाई। अनेक अपत्यों के होने पर भी हिमालय पार्वती पर विशेष प्रेम रखते थे। बालस्वभाव-सुलभ चापल्य से पार्वती कभी मन्दाकिनी तट पर, कभी सैकतमण्डपों पर तथा कभी सखियों के साथ गुड़ियों से खेला करती थी। धीरे-धीरे पार्वती ने युवावस्था प्राप्त की और उन्हें मधुर शब्द सीखने की अभिलाषा हुई। राजहंसों ने पार्वती को विलासयुक्त मधुर चाल सिखाई। ऐसा लगता था मानों विधाता ने पार्वती के निर्माण में विश्व के सम्पूर्ण लावण्य को पार्वती में ही एकत्र समाविष्ट कर दिया हो। पार्वती का अंग-प्रत्यंग अत्यन्त लावण्यमय था। सर्वकाल सुन्दर उनका मुख चन्द्रमा तथा कमल दोनों से अधिक सुन्दर था। वह मृदुभाषिणी, लज्जालु थी। योगिराज नारद ने हिमालय के पास जाकर बताया कि पार्वती का विवाह

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकरजी के साथ होगा। अतएव हिमालय ने भी अन्यत्र उनके लिए वर की खोज नहीं की तथा शिवजी ने भी पार्वती को पिछले जन्म में दक्षसुता सती ही जानकर किसी अन्य स्त्री को अपनी अर्द्धाङ्गिनी नहीं बनाया। उसी हिमालय के सुरम्य शिखर पर स्वर्गादि फलों को देने वाले भगवान् शिव भक्तों को सदाचार का उपदेश देते थे। हिमालय ने वहीं उनकी सेवा-सुश्रूषा के लिए दो सखियों सहित पार्वती को नियुक्त कर दिया। शिवजी ने समाधि भंग करने वाली पार्वती की सेवा-सुश्रूषा स्वीकार कर ली। सुकुमारी पार्वती भी शिवजी के नित्यकर्म के लिए जल, कुशाएँ, पुष्प आदि लाकर श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा-सुश्रूषा करती थी।

कालिदास के सम्बन्ध में कवियों की सूक्तियाँ

१—उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

२—कालिदासगिरां सारं कालिदाससरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः॥

३—महिषं दधि सशर्करं पयः कालिदासकविता नवं वयः।
शारदेन्दुरबला च कोमला स्वर्गशेषमुपभुञ्जते जनाः॥

४—निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तयः।
प्रीतिमधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

५—पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्यातुः परिचयः

अस्त्युत्तरप्रदेशोऽत्र, राज्येषु भारतस्य वै ।
हृदयमिव सुराष्ट्रस्य, तत्राऽऽस्ते 'शाहजीपुरम्' ।।१।।

कठिनी-गोमती-गंगा-देवहूत्यादिभिः सह ।
पुनन्ति सरितो यस्य भूमिममृतोपमैर्जलैः ।।२।।

यत्र देवो 'विश्वनाथः' 'दुर्गा' दुर्गत्तिहारिणी ।
'वनखण्डीनाथ' रूपोऽसौ शङ्करः शन्तनोति नः ।।३।।

तस्मिन् मण्डले लोक-विश्रुतो 'नाहिला'भिधः ।
ग्रामो विप्रप्रमुखाणां विदुषां व्यापारिणामपि ।।४।।

पाण्डित्ये कर्मकाण्डे च ज्योतिष्कर्मणि वैद्यके ।
वयने च विदुर्लोकाः 'लघुकाशी'ति प्रागमुम् ।।५।।

यस्योत्तरस्यां दिशि तोयराशी राशीकृता कीर्तिरिव द्विजानाम् ।
महोर्मिभिः पूतपतत्रिपद्मैरशेषशोभां विकचीकरोति ।। ६ ।।

सनाढ्येषु च विप्रेषु तत्र पाराशरान्वये ।
'पाण्डेयोपाह्व' विप्रोऽभूः'च्छिबचरण' इतीरितः ।।७।।

शिवस्य चरणयोर्यस्य भक्तिरासीन्निरन्तरम् ।
तत्सूनुः पार्वतीजानी रेवतीरामविश्रुतः ।।८।।

रेवती-रमणे यस्य नितरां मानसं ह्यभूत् ।
चत्वारश्चाभवंस्तस्य पुत्राः पंक्तिपावनाः ।।९।।

जगन्नाथोऽथ जयलालो रामलालस्तथैव च ।
प्यारेलाल इति ख्यातो गीतवाद्य-विशारदः ।।१०।।

द्वितीयश्च तुरीयश्च तेषु यावपुत्रिणौ ।
तृतीयो विदुरो जातः कथाकीर्त्तनकौशलः ।।११।।

सुदामादेविगर्भादाद्यस्याभवतां सुतौ ।
ज्येष्ठो ज्येष्ठ-गुणोपेतः रामचन्द्रः प्रतापवान् ।।१२।।

परमेश्वरदीनोऽहं कनिष्ठो वागुपासकः ।
अध्यापनमध्ययनं यस्य कृत्यं सदाऽभवत् ।।१३।।

यस्य च श्यामाऽश्यामा वामा हृदयाभिरामा तन्वङ्गी ।
तस्याः सुधीः 'सुधीरः' अवनिकुमारश्चापि सुतौ जातौ ।।१४।।

शुभं भूयात् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

(प्रथमः सर्गः)

श्लोकाः	श्लोकांकाः
अथावमानेन पितुः	२१
अनन्तरत्नप्रभवस्य	३
अनर्घ्यमर्घ्येण तमद्रिनाथः	५८
अन्योन्यमुत्पीडयद्	४०
अभ्युन्नतांगुष्ठ	३३
अयाचितारं न हि	५२
अवचितबलिपुष्पा	६०
असंभृतं मण्डनमङ्ग	३१
असूत सा नागवधू	२०
अस्त्युत्तरस्यां दिशि	१
आमेखलं संचरतां	६५
उद्वेजयत्विन्यङ्गुलि	११
उन्मीलितं तूलिकयेव	३२
एतावता नन्वनुमेय	३७
कण्ठस्य तस्याः स्तन	४२
कपोलकण्डूः करिः	९
कालक्रमेणाथ तयोः	१९
गणा नमेरुप्रसवावतंसा	५५
गुरुः प्रगल्भेऽपि	५१
चन्द्रं गता पद्म	४३
तया दुहित्रा सुतरां	२४
तत्राऽग्निमाधाय	५७
तस्याः प्रविष्टा नतनाभि	३८
तस्याः शलाकाञ्जन	४७
तां पार्वतीत्याभिजनेन	२६
तां नारदः कामचरः	५०
तां हंसमालाः शरदीव	३०
तुषारसंघातशिलाः	५६
दिने दिने सा परिवर्धमाना	२५
दिवाकराद् रक्षति यो	१२

श्लोकाः	श्लोकांकाः
नागेन्द्रहस्तास्त्वचि	३३
न्यस्ताक्षरा धातुरसेन	७
पदं तुषारस्रुतिधौत	६
पुष्पं प्रवालोपहितं	४४
प्रत्यर्थिभूतामपि तां	५९
प्रभामहत्या शिखयेव	२८
प्रवातनीलोत्पल	४६
प्रसन्नदिक्पांसु	२३
भागीरथीनिर्झरसीकराणां	१५
मध्येन सा वेदिविलग्न	३९
मन्दाकिनी सैकत	२९
महीभृतः पुत्रवतोऽपि	२७
यं सर्वशैलाः परिकल्प्य	२
यः पूरयन् कीचकं	८
यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य	१७
यत्रांशुकाक्षेपविलज्जि	१४
यदैव पूर्वे जनने	५३
यश्चाप्सरोविभ्रम	४
लांगूलविक्षेपविसर्पि	१३
वनेचराणां वनिता	१०
वृत्तानुपूर्वे च न चाति	३५
शिरीषपुष्पाधिक	४१
स कृत्तिवासास्तपसे	५४
सप्तर्षिहस्तावचिता	१६
स मानसीं मेरुसखः	१८
सर्वोपमाद्रव्यसमु	४९
सा भूधराणामधिपेन	२२
सा राजहंसैरिव	३४
स्वरेण तस्याममृत	५४

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीः ॥

कुमारसम्भवम्

सान्वय 'सुधा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमः सर्गः

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य, स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥१॥

शरदिन्दुनिभां शुभ्रां शुभ्रवस्त्रैरलङ्कृताम्।
कलहंसकृताऽऽवासां वरदां शारदां नमः॥

अन्वयः—उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयः नाम नगाधिराजः पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य पृथिव्याः मानदण्डः इव स्थितः अस्ति।

व्याख्या—अथ तत्रभवान् कविकुलगुरुर्वाग्विलासः कालिदासः सत्काव्यस्य सकलाभीष्टचतुर्वर्गफलप्राप्तिकामनया पार्वती-परमेश्वरयोः परममंगललीलाललितं कुमारसम्भवाख्यं महाकाव्यं चिकीर्षुः, 'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम्' इति शास्त्र-निर्देशादादौ वक्ष्यमाणविषयानुरूपं वस्तुं निर्दिशति—अस्तीति। उत्तरस्याम्=उदीच्याम्। दिशि=दिशायाम्। देवतात्मा=देवता आत्मा यस्य सः=देवताधिष्ठितः। हिमालयः—हिमस्यालयः। नाम=संज्ञकः, ('निकायनिकयालयाः' इत्यमरः) नगाधिराजः-नगानां=पर्वतानाम्, अधिराजः=अधिपतिः ('शैलवृक्षौ नगावगौ' इत्यमरः)। पूर्वापरौ=पूर्वश्चापरश्च पूर्वापरौ=पूर्वपश्चिमौ। तोयनिधि=तोयानां निधिस्तौ=सागरौ। वगाह्य=अवगाह्य। पृथिव्याः=भूमेः। मानदण्डः इव—मीयते अनेन तन्मानं तच्चासौ दण्डश्च सः, इव=यथा—आयामपरिच्छेदकदण्डसदृशः। स्थितः=अवस्थितः। अस्ति=वर्तते। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तल्लक्षणं यथा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। उपेन्द्रवज्रा अथ इन्द्रवज्रा—एतद्द्वयं यत्र हि सोपजातिः।

सरलार्थः—भारतस्योत्तरदिशायां पवित्रः पर्वतराजो हिमालयः पूर्वपश्चिमौ सागरौ वगाह्य तथा स्थितः अस्ति यथा सः पृथ्वीं मापमान अस्तीति।

हिन्दी—(भारतवर्ष की) उत्तरी दिशा में देवताओं से अधिष्ठित हिमालय नामक पर्वतराज पूर्व तथा पश्चिम समुद्र तक फैलकर पृथ्वी के मानदण्ड के समान अवस्थित है ॥१॥

टिप्पणी—हिमालय के पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं में समुद्र की व्यापकता लोकप्रसिद्ध है। ब्रह्माण्डपुराण में भी यही प्रतिपादित किया गया है—

कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणे वर्षपर्वतौ।
पूर्वपश्चिमगावेतावर्णवान्तरुपस्थितौ ॥ इति ॥

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं, मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च, पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ॥२॥

अन्वयः—सर्वशैलाः यं वत्सं परिकल्प्य दोहदक्षे मेरौ दोग्धरि स्थिते (सति) भास्वन्ति रत्नानि, महौषधीः, पृथूपदिष्टां धरित्रीम् च दुदुहुः।

व्याख्या—यमिति। सर्वशैलाः—सर्वे च ते शैलाः=समस्तपर्वताः। ('अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयः' इत्यमरः)। यम्=हिमालयम्। वत्सम्=सुतम्। परिकल्प्य=कल्पयित्वा। दोहदक्षे—दोहने=दोहनक्रियायां दक्षः=कुशलः, तस्मिन्। मेरौ=सुमेरुपर्वते। दोग्धरि=दोहके। स्थिते=अवस्थिते सति। भास्वन्ति=देदीप्यमानानि। रत्नानि=मरकतादिमणीन्। महौषधीः—सञ्जीवन्यादीः च ('ओषध्यः फलपाकान्ताः' इत्यमरः)। पृथूपदिष्टाम्—पृथुः=पृथूनामराजा, तेनोपदिष्टाम्=वैन्योपदिष्टाम्। गोरूपधरां धरित्रीं=पृथ्वीम्। ('धरा धरित्री धरणिः' इत्यमरः)। दुदुहुः=अदुहन्। अत्र तुल्ययोगितालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—सर्वे पर्वताः यं सुमेरुपर्वतं दोग्धारं कृत्वा हिमालयञ्च सुतं परिकल्प्य कान्तिमन्ति रत्नानि महौषधीश्च वैन्योपदिष्टां धरां दुग्धवन्तः।

हिन्दी—जिस हिमालय पर्वत को सभी पर्वतों ने बछड़ा मान कर तथा

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुमेरु पर्वत को दुहने वाला बना कर पृथुराज द्वारा उपदिष्ट पृथ्वी से चमचमाती हुई मरकतादि मणियाँ तथा सञ्जीवनी आदि महौषधियाँ दुही थीं।

टिप्पणी—प्राचीनकाल में धर्मद्रोही ब्राह्मणावमानी वैन नामक एक दुष्ट राजा हुआ। उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर ऋषियों तथा मुनियों ने उसका वध कर उसकी दक्षिण बाहु का मन्थन किया, जिससे नारायणांशधारी प्रथम क्षितीश्वर पृथु उत्पन्न हुए। समस्त शुभ लक्षणों से युक्त पृथु का मुनियों ने राज्याभिषेक कर पृथ्वी का राजा बनाया। इनके राज्य में एक बार प्रजा अन्नादि कष्टों से अत्यन्त पीड़ित हुई। उसके कष्ट निवारणार्थ राजा ने गोरूपिणी पृथ्वी से समस्त पदार्थों का दोहन किया था।

सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः।
सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम्॥ (श्रीमद्भा० ४-१८-२६)

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य, हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते, निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥३॥

अन्वयः—अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं सौभाग्यविलोपि न जातम्। हि गुणसन्निपाते एकः दोषः इन्दोः किरणेषु अङ्कः इव निमज्जति॥३॥

व्याख्या—अनन्तेति। अनन्तरत्नप्रभवस्य—अविद्यमानः अन्तो येषां तानि अनन्तानि=असंख्यानि, अनन्तानि च तानि रत्नानि=श्रेष्ठवस्तूनि, तेषां प्रभवः=उत्पत्तिस्थलम्, तस्य। यस्य=हिमालयस्य। हिमम्=तुषारम्। सौभाग्यविलोपि=सुभगस्य भावः सौभाग्यम्, तद्विलुम्पतीति सौभाग्यविलोपि=सौन्दर्यापहारि। न जातं=नैव सम्भूतम्। हि—यतः। गुणसन्निपाते—गुणानां सन्निपातस्तस्मिन्=गुणसमुदाये। एकः दोषः=केवलमेकदूषणम्। इन्दोः=चन्द्रस्य ('हिमांशुश्चन्द्रमा चन्द्र इन्दुः' इत्यमरः)। किरणेषु=रश्मिसु ('किरणोऽस्रमयूखांशुगभस्तिघृणि रश्मयः' इत्यमरः)। अङ्कः इव=कलङ्कसदृशम्। निमज्जति=अन्तर्निलीनो भवति। अत्रार्थान्तरन्यासालङ्कारः, उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—असंख्यरत्नोत्पादकस्य हिमालयस्यैकमात्रदूषणं हिमं सौन्दर्यापहारि न भवति यतो जगदाह्लादकस्य चन्द्रस्य किरणेषु कलङ्कः अन्तर्निलीनो भवति तथैव गुणगणे एकः दोषः अपि निलीयते।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी—असंख्य रत्नों को उत्पन्न करने वाले जिस हिमालय की शोभा का अपकर्ष बर्फ नहीं कर सका है, क्योंकि गुणों के समुदाय में एक दोष उसी प्रकार छिप जाता है जैसे चन्द्रमा की किरणों में कलङ्क (काला धब्बा) छिप जाता है ॥३॥

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां, सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्त्ति ।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम् ॥४॥

अन्वयः—यः च अप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं बलाहकच्छेद-विभक्तरागां धातुमत्ताम् अकालसन्ध्याम् इव शिखरैः बिभर्ति ।

व्याख्या—यश्चेति । यः=हिमालयः च । अप्सरोविभ्रममण्डनानाम्—अप्सरसां विभ्रमः अप्सरोविभ्रमस्तेन मण्डनानि, तेषाम्=स्वर्गवारविलासिनी-विलासभूषणानाम् । सम्पादयित्रीम्=विधात्रीम् । बलाहकच्छेदविभक्तरागाम्—बलाहकानाम्=पयोधराणां, छेदाः=खण्डा, तेषु विभक्तः=संक्रमितः रागः यस्यां सा ताम् ('अभ्रं मेघो वारिवाहः स्तनयित्नुर्बलाहकः' इत्यमरः) । धातु-मत्ताम्-धातवो विद्यन्ते यस्मिन्नसौ धातुमान्, तस्य भावो धातुमत्ता, ताम् गैरिकादिधातुयोगिताम् । अकालसन्ध्याम् इव—न कालः अकालः तस्मिन् सन्ध्या ताम्=अनवसरप्राप्तसन्ध्यां यथा । शिखरैः=शृङ्गैः ('कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्' इत्यमरः) । बिभर्ति=धारयति । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । उपजाति-वृत्तम् ।

सरलार्थः—हिमालयः सुराङ्गनानां विलासविभूषणानां विधात्रीं घन-खण्डेषु संक्रमितरागां गैरकादिधातुयोगितामनवसरागतसन्ध्यामिव शृङ्गैर्द-धाति ।

हिन्दी—तथा जो (हिमालय) अप्सराओं के विलासालंकरणों को सम्पादित करने वाली मेघ-खण्डों में विभक्त रंगवाली गेरु-सिन्दूर आदि धातु-योगिता को अकालप्राप्त-संध्या के समान (अपने) शिखरों से धारण करता है ॥४॥

हिमालयस्य सर्वकालरमणीयतां वर्णयति—

आमेखलं सञ्चरतां घनानां, छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते, शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥५॥

अन्वयः—सिद्धाः आमेखलं सञ्चरतां घनानाम् अधः सानुगतां छायां निषेव्य वृष्टिभिः उद्वेजिताः यस्य आतपवन्ति शृङ्गाणि आश्रयन्ते ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—आमेखलमिति । सिद्धाः=देवयोनिविशेषाः । आमेखलम्–मेखलाभ्यः आ इत्यामेखलम् = नितम्बपर्यन्तम् । सञ्चरताम् = संचरणं कुर्वताम् । घनानाम्=वारिवाहानाम् । अधः सानुगताम्=निम्नदेशे प्रस्थप्राप्ताम् । छायाम्=अनातपम् । निषेव्य=सेवित्वा । वृष्टिभिः=वर्षाभिः । उद्वेजिताः=आकुलिताः । यस्य = यत्पर्वतस्य । आतपवन्ति = घर्मयुक्तानि । शृङ्गाणि = शिखराणि । आश्रयन्ते = आश्रयणं कुर्वन्ति । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—अत्युच्चहिमाद्रेः मध्यभागे घनाः सञ्चरन्ति न तु तच्छिखरेषु । अतस्तदुपरि स्थिताः सिद्धाः आतपक्लान्ताः निम्नदेशे प्रस्थप्राप्ताः घनानां छायां निषेवन्ते । वृष्टिपीड़िताश्च ते पुनः आतपवन्ति हिमशिखराणि सेवन्ते ।

हिन्दी—हिमालय के मध्यशिखर पर सञ्चरण करते हुए बादलों के निम्न भाग में पहुँची हुई छाया का सेवन कर सिद्धगण वर्षा से व्याकुल होकर (पुनः) जिस (हिमालय) के धूपयुक्त शिखरों का सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं, यस्मिन्नदृष्ट्वाऽपि हतद्विपानाम् ।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥६॥

अन्वयः—यस्मिन् किराताः तुषारस्रुतिधौतरक्तं हतद्विपानां केसरिणां पदम् अदृष्ट्वा अपि नखरन्ध्रमुक्तैः मुक्ताफलैः मार्गम् विदन्ति ।

व्याख्या—पदमिति । यस्मिन् = हिमवति । किराताः = भिल्लाः । तुषारस्रुतिधौतरक्तम्—तुषाराणां स्रुतयः तुषारस्रुतयस्तैः धौतं रक्तं यस्य तत् = हिमस्रवणक्षालितरुधिरम् ('तुषारः शीतलः शीतो हिमः सप्तान्यलिङ्गकाः' इत्यमरः) । हतद्विपानाम्—द्वाभ्यां पिबन्तीति द्विपाः, हताः द्विपाः यैस्ते, तेषाम्=निहतगजानाम् । केसरिणाम्–केसराः सन्ति येषां ते, तेषाम्=सिंहानाम्। पदम् = पदचिह्नम् । अदृष्ट्वा = अनवलोक्य । अपि । नखरन्ध्रमुक्तैः—नखानां रंध्राणि, तैर्मुक्तानि, तैः = करजान्तरालमुक्तैः ('रन्ध्रं तु दूषणे छिद्रे' इति विश्वः) । मुक्ताफलैः=गजमौक्तिकैः । मार्गम् = वर्त्म । विदन्ति = जानन्ति । अत्रोदात्तालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—यत्र भिल्लाः हिमस्रवणक्षालितपदचिह्नं निहतगजानां सिंहानां मार्गं नखच्छिद्रमुक्तैर्गजमौक्तिकैरेव जानन्ति ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी--जिस हिमालय पर किरात बर्फ के पिघलने के कारण धुले हुए पदचिह्न वाले, मारे गये हाथियों वाले सिंहों के मार्ग को नाखूनों के छिद्रों से गिरे हुए गज-मौक्तिकों द्वारा ही जान पाते हैं ।। ६ ।।

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र, भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणाः ।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगम् ।। ७ ।।

अन्वयः—यत्र धातुरसेन न्यस्ताक्षराः कुञ्जरबिन्दुशोणाः भूर्जत्वचः विद्याधरसुन्दरीणाम् अनङ्गलेखक्रियया उपयोगं व्रजन्ति ।

व्याख्या--न्यस्तेति । यत्र=यस्मिन्नद्रौ । धातुरसेन--धातूनां रसस्तेन=सिन्दूरादिद्रवेण । न्यस्ताक्षराः-न्यस्तानि अक्षराणि यासु, ताः=लिखितवर्णाः । कुञ्जरबिन्दुशोणाः—कुञ्जराणां बिन्दवः कुञ्जरबिन्दवः, तद्वि शोणाः=गजबिन्दुलोहिताः ('रोहितो लोहितो रक्तः शोणः कोकनदच्छविः' इत्यमरः) । भूर्जत्वचः -भूर्जस्य त्वचः भूर्जत्वचः=भूर्जपत्रवल्कलानि । विद्याधरसुन्दरीणाम्-विद्याधराणां सुन्दर्यस्तासाम्=विद्याधरवनितानाम् ('सुन्दरी रमणी रामा' इति स्त्रीणां भेदेषु अमरः) । अनंगलेखक्रियया--नास्त्यङ्गं यस्य सः अनङ्गः, अनंगस्य लेखा लिख्यन्ते क्रियन्ते या सा क्रिया, तया=कामपत्रलेखनेन । उपयोगम्=उयुक्तताम् । व्रजन्ति=गच्छन्ति ।

सरलार्थः—यत्र सिन्दूरादिरसेन लिखितवर्णाः गजबिन्दुरक्ताः भूर्जपत्रत्वचः विद्याधरस्त्रीणां कामपत्रविलेखनेनोपयोगितां गच्छन्ति ।। ७ ।।

हिन्दी—जिस पर्वत पर विद्याधराङ्गनायें गजबिन्दु-सदृश रक्त-वर्ण के भोजपत्रों पर सिन्दूरादि धातु-रस से अपने प्रेम-सन्देश लिखकर प्रियतमों के पास भेजती हैं ।। ७ ।।

यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान्दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ।।८।।

अन्वयः—यः दरीमुखोत्थेन समीरणेन कीचकरन्ध्रभागान् पूरयन् उद्गास्यतां किन्नराणां तानप्रदायित्वम् उपगन्तुम् इच्छति इव ।

व्याख्या--य इति । यः=यो हिमालयः । दरीमुखोत्थेन-दरी एव मुखं दरीमुखं तेनोत्थितम्, तेन=कन्दरावदनोद्गतेन ('दरी तु कन्दरो वाऽस्त्री देवखातबिले गुहा' इत्यमरः) । समीरणेन=पवनेन ('समीरमारुतमरुज्जगत्प्राण-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समीरणाः । इत्यमरः) कीचकरन्ध्रभागान्–कीचकाः = वेणुविशेषास्तेषां रन्ध्रभागाः = छिद्रस्थानानि, तान् ('वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इत्यमरः) । पूरयन् = विभ्रन् वादयन् वा । उद्गास्यतां–उद् = उच्चैः, गास्यतां = गानं विधास्यताम् । किन्नराणाम् = किम्पुरुषाणाम् । तानप्रदायित्वम् = वंशस्वरप्रदातृत्वम् । उपगन्तुम् = प्राप्तुम् । इच्छति इव = वाञ्छतीव । अत्र रूपकालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—हिमालयो जनस्य मुखनिर्गतेन पवनेनेव कन्दरोत्थितेन पवनेन वंशरन्ध्राणि परिपूर्य गानं विधास्यतां किन्नराणां स्वरप्रदातृत्वं कर्त्तुं वाञ्छतीव ॥८॥

हिन्दी—जो (हिमालय) पर्वत गुफाओं से उठी हुई वायु द्वारा बाँसों के छिद्रों को भरता हुआ गान आरम्भ कर रहे किन्नरों को मानो सुर प्रदान करना चाहता है ॥८॥

कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं, विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥९॥

अन्वयः—यत्र करिभिः कपोलकण्डूः विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् स्रुतक्षीरतया प्रसूतः गन्धः सानूनि सुरभीकरोति ।

व्याख्या—कपोलेति । यत्र = यस्मिन् हिमवति । करिभिः = गजैः ('गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी' इत्यमरः) । कपोलकण्डूः—कपोलयोः = गण्डस्थलयोः, कण्डवः = कण्डूयनानि, ताः । विनेतुम् = दूरीकर्त्तुम् । विघट्टितानाम् = विहितविघर्षणानाम् । सरलद्रुमाणाम्–सरलाः द्रुमाः सरलद्रुमास्तेषाम् = सरलवृक्षाणाम् । स्रुतक्षीरतया—स्रुतानि क्षीराणि येषां, तेषां भावः स्रुतक्षीरता, तया = क्षीरस्रवणत्वेन । प्रसूतः = समुत्पन्नः । गन्धः = सुरभिः । सानूनि = शिखराणि । सुरभीकरोति–असुरभिं सुरभिं करोतीति सुरभीकरोति = सुगन्धयुक्तानि करोति । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—यत्र पर्वते प्रवहन् पवनः गजैः कपोलकण्डूशमनार्थं देवदार्वादिसरलवृक्षघर्षणेन प्रवाहितक्षीरत्वेन शिखराणि ससुगन्धीनि करोति ।

हिन्दी—जहाँ हाथियों के द्वारा कपोलों (गण्डस्थलों) की खुजली

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिटाने के लिए विघर्षित (रगड़े हुए) सरल देवदारु आदि वृक्षों के टपकते हुए दूध से उत्पन्न वायु पर्वत-शिखरों को सुगन्धित बनाता है ॥९॥

वनेचराणां वनितासखानां, दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः ।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥१०॥

अन्वयः—यत्र रजन्यां दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः ओषधयः वनितासखानां वनेचराणाम् अतैलपूराः सुरतप्रदीपाः भवन्ति ।

व्याख्या—वनेचराणामिति । यत्र=यस्मिन् पर्वते । रजन्यां=रात्रौ ('विभावरी तमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी' इत्यमरः) । दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः-दर्य एव गृहाः दरीगृहास्तेषामुत्सङ्गेषु निषक्तः भासः येषां ते=कन्दराभ्यन्तरसंक्रान्तकान्तयः । ओषधयः=तृणज्योतींषि ('अग्नावोषधीषु च । तेजोनिधाय रविरस्तं याति' इत्यमरः) । वनितासखानां—वनितानां सखायः वनितासखाः तेषाम्=स्त्रीसहितानाम् । वनेचराणाम्—वने चरन्तीति वनेचरास्तेषां=किरातानाम् । अतैलपूराः—तैलेन पूर्यन्ते इति तैलपूराः, न तैलपूरा इत्यतैलपूराः=तैलबिन्दुनिरपेक्षाः सुरतप्रदीपाः—सुरते प्रदीपाः सुरतप्रदीपाः =रतिकालदीपाः । भवन्ति=जायन्ते ।

सरलार्थः—यस्मिन् हिमालये रात्रौ कन्दराभ्यन्तरे प्रकाशमानाः वृक्षविशेषाः सस्त्रीकानां किरातानां तैलबिन्दुनिरपेक्षाः रतिकालदीपाः भवन्ति ।

हिन्दी—जहाँ (हिमालय पर)रात्रि में पर्वत कन्दराओं में प्रकाशमान वृक्षविशेष कान्तियुक्त होकर किरात-दम्पतियों के लिए तेज की अपेक्षा न रखने वाले सुरत-प्रदीप बन जाते हैं ॥१०॥

उद्वेजयत्यङ्गुलिपार्ष्णिभागान्, मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र ।
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्त्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः ॥११॥

अन्वयः—यत्र शिलीभूतहिमे अङ्गुलिपार्ष्णिभागान् उद्वेजयति अपि मार्गे दुर्वहश्रोणिपयोधरार्त्ताः अश्वमुख्यः मन्दां गतिं न भिन्दन्ति ।

व्याख्या—उद्वेजयतीति यत्र=यस्मिन् । शिलीभूतहिमे—अशिलाः शिलाः सम्पद्यन्ते तथाभूताः हिमाः यत्र सः शिलीभूतहिमस्तस्मिन्=काठिन्यात् पाषाणखण्डसदृशतुषारे ('पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मानः शिला दृशत्' इत्यमरः) । अङ्गुलिपार्ष्णिभागान्—अङ्गुलयश्च पार्ष्णी चाङ्गुलिपार्ष्णी, तद्भागास्तान्=

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चरणांगुलिचरणमूलप्रदेशान् ('पार्ष्णि स्त्रीपुंसयोः पादमूले स्याद् ध्वजिनी करौ' इति रन्तिदेवः) उद्वेजयति अपि=पीडयत्यपि। मार्गे=वर्त्मनि। दुर्वहश्रोणिपयोधरार्त्ता—दुःखेन वोढुं शक्यं दुर्वहम्, श्रोणयश्च पयोधराश्च श्रोणिपयोधरम्, दुर्वहं च तच्छ्रोणिपयोधरं दुर्वहश्रोणिपयोधरम्, तेनार्त्ताः= दुर्धरनितम्बकुचमण्डलभारपीडिताः। अध्वमुख्यः—अध्वानां मुखानीव मुखानि यासां ताः=किन्नरनार्यः। मन्दाम्=मन्थराम्। गतिम्=गमनम्। न भिन्दन्ति=नैव त्यजन्ति। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—यस्मिन् हिममये पर्वते पथिकानां चरणाङ्गुलिचरणमूलप्रदेशान् क्लेशयत्यपि दुर्वहनितम्बस्तनभाराकुलाः किन्नर्यः पथि मन्थरगतिं न मुञ्चन्ति।

हिन्दी—(सर्वत्र) जमी हुई बर्फ वाले जिस हिमालय पर मार्ग में जो पथिकों के पावों की अंगुलियों तथा एड़ियों को अत्यन्त पीड़ित करने पर भी बोझीले नितम्ब तथा पयोधरों से पीड़ित किन्नर-स्त्रियाँ अपनी मन्दगति को नहीं छोड़ पाती हैं, अर्थात् शीघ्रता से चलने में असमर्थ रहती हैं ॥११॥

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवाऽन्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैःशिरसां सतीव ॥१२॥

अन्वयः—यः दिवाभीतम् इव गुहासु लीनम् अन्धकारम् दिवाकरात् रक्षति। उच्चैःशिरसां शरणं प्रपन्ने क्षुद्रे अपि सति इव नूनं ममत्वम्।

व्याख्या—दिवाकरादिति। यः=हिमालयः। दिवाभीतम्=दिवसत्रस्तम्। इव=यथा। गुहासु=कन्दरासु। लीनम्=प्रच्छन्नम्। अन्धकारं=तमः ('अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः' इत्यमरः)। दिवाकरात्=सूर्यात्। रक्षति=अवति। उच्चैःशिरसाम्=उन्नतमस्तकानाम्। शरणम् प्रपन्ने=शरणमागते। क्षुद्रेऽपि=नीचेऽपि। सति=सज्जने। इव=यथा। नूनम्=खलु। ममत्वम्=आत्मीयत्वम् भवतीति।

सरलार्थः—दिवसभीतमुलूकसदृशम् कन्दरासु निलीनं तमः यो हिमालयः सूर्यात् रक्षति। यतो महापुरुषाणां शरणं गते नीचजनेऽपि श्रेष्ठजन इव निश्चयेन आत्मीयत्वं भवति ॥१२॥

हिन्दी—जो (हिमालय) दिन से डरे हुए उलूक की भाँति गुफाओं में छिपे अन्धकार की सूर्य से रक्षा करता है। निश्चय ही महान् पुरुषों की शरण

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में जाने पर क्षुद्र (नीच) पुरुष पर भी सज्जन के समान ही आत्मीयता होती है ॥१२॥

लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः ।
यस्याऽर्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥१३॥

अन्वयः—चमर्यः इतस्ततः लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैः चन्द्रमरीचिगौरैः बालव्यजनैः यस्य गिरिराजशब्दम् अर्थयुक्तं कुर्वन्ति ।

व्याख्या—लाङ्गूलेति । चमर्यः=चमरमृग्यः ('चमरं चामरे स्त्री तु मञ्जरीमृगभेदयोः' इति मेदिनी) । इतस्ततः=सर्वत्रः । लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैः=लाङ्गूलानां विक्षेपः लाङ्गूलविक्षेपः, तैः विसर्पिण्यः शोभाः येषां तानि तैः=पुच्छविलोडनविसारिद्युतिभिः । चन्द्रमरीचिगौरैः—चन्द्रस्य मरीचय इति चन्द्रमरीचयः, चन्द्रमरीचयः इव गौरास्तैः=सोमकिरणोज्ज्वलैः । बालव्यजनैः=चामरैः । यस्य=हिमालयस्य । गिरिराजशब्दम्=पर्वतराजाभिधानम् । अर्थयुक्तम्=सार्थम् । कुर्वन्ति=विदधति । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—इतस्ततश्चमरमृग्यः सोमकिरणोज्ज्वलैः पुच्छविधूननविसारिकान्तैः बालव्यजनैः यस्य हिमालयस्य गिरिराजाभिधानमन्वर्थं कुर्वन्ति ॥१३॥

हिन्दी—चमरी गायें इधर-उधर अपनी पूछों को हिलाने से अत्यन्त कान्तियुक्त, चन्द्रकिरणों के समान धवल चमरों से जिस पर्वत (हिमालय) के गिरिराज नाम को सार्थक करती हैं ।

यत्रांऽशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किम्पुरुषाङ्गनानाम् ।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ॥१४॥

अन्वयः—यत्र अंशुकाक्षेपविलज्जितानां किम्पुरुषाङ्गनानां यदृच्छया दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः जलदाः तिरस्करिण्यः भवन्ति ।

व्याख्या—यत्रेति । यत्र=यस्मिन् हिमालये । अंशुकाक्षेपविलज्जितानाम्-अंशुभिः काशत ऐत्यंशुकम्, तेषामाक्षेपस्तेन विलज्जितानाम्=सूक्ष्मवस्त्राक्षेपहीनानाम् ('अंशुः सूत्रादिसूक्ष्मांशे किरणे चन्द्रदीधितेः' इति हैमः) । किम्पुरुषाङ्गनानाम्=किन्नरनारीणाम् । यदृच्छया=स्वेच्छया, स्वभावतः । दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः—दर्य एव गृहाः दरीगृहाः=कन्दराः, तेषां द्वारेषु

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विलम्बिनः=आश्रयिणः, बिम्बाः=मंडलानि येषां ते ('बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु' इत्यमरः)। जलदाः=मेघाः ('धाराधरो जलधरस्तडित्वान् वारिदाम्बुभृत्' इत्यमरः)। तिरस्कारिण्यः—तिरस्कुर्वन्तीति तिरस्कारिण्यः=जवनिकाः। 'प्रतिसीरा जवनिका स्यात् तिरस्करिणीति चैव सा' इत्यमरः)। भवन्ति। अत्र परिणामालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—यस्मिन् हिमालये प्रियतमैः क्षीणांशुकापहारेण लज्जितानां किन्नरस्त्रीणां स्वभावतः कन्दराद्वाराश्रितमण्डलाः घनाः जवनिका भवन्ति।

हिन्दी—जिस पर्वत पर प्रियतमों द्वारा सूक्ष्म वस्त्रों के खींचे जाने से लज्जित किन्नरियों के लिए स्वभावतः गुफागृह-द्वारों पर पड़ने वाले मेघमण्डल ही जवनिका अर्थात् पर्दा बन जाते हैं ॥१४॥

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हैः ॥१५॥

अन्वयः भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः भिन्नशिखण्डिबर्हैः यद्वायुः अन्विष्टमृगैः किरातैः आसेव्यते।

व्याख्या भागीरथीति। भागीरथीनिर्झरसीकरणाम्—भागीरथ्याः निर्झरः तस्य ये सीकराः, तेषाम्=गङ्गानिर्झरजलकणानाम् (गंगा विष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा। भागीरथी त्रिपथगा' इत्यमरः। सीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः, इत्यमरः)। वोढा—वहतीति वोढा=वहनक्षमः। मुहुः=वारंवारम्। कम्पितदेवदारुः—कम्पिताः देवदारवो येन सः=चालितदेवदारुवृक्षः। भिन्नशिखण्डिबर्हैः—शिखण्डोऽस्ति येषां ते शिखण्डिनः, तेषां बर्हाणि, भिन्नानि शिखण्डिबर्हाणि येन सः=पृथक्कृतमयूरपिच्छः 'शिखण्डस्तु पिच्छबर्हे नपुंसके' इत्यमरः)। यद्वायुः—यस्य पर्वतस्य पवनः। अन्विष्टमृगैः=मृग्यते इति मृगाः, अन्विष्टाः=मार्गिताः, मृगाः=हरिणाः यैस्ते, तैः। किरातैः=वनेचरैः। आसेव्यते=सेवनं क्रियते। अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—यस्य गंगाप्रपाताम्बुकणयुक्तः मुहुश्चालितदेवदारुवृक्षश्छिन्नमयूरपिच्छः पवनः मृगान्विष्यमाणैर्वनेचरैः सेव्यते ॥१५॥

हिन्दी—जिस हिमालय पर्वत की गंगाप्रवाह के जलकणों से युक्त बार-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बार देवदारुवृक्षों को हिला देनेवाली तथा मयूरपंखों को उखाड़ देने वाली वायु का सेवन शिकार के लिए मृगों की खोज करने वाले किरातों द्वारा किया जाता है ।।१५।।

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान्परिवर्तमानः ।
पद्मानि यस्याऽग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ।।१६।।

अन्वयः—यस्य सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि अग्रसरोरुहाणि पद्मानि अधः परिवर्तमानः विवस्वान् ऊर्ध्वमुखैः मयूखैः प्रतिबोधयति ।

व्याख्या—सप्तर्षिरिति । यस्य=हिमालयस्य । सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि-सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः, तेषां हस्तेभ्यः अवचितानि सप्तर्षिहस्तावचितानि, तेभ्यः अवशेषाणि, तानि=कश्यपादिसप्तर्षिकरत्रोटितावशिष्टानि । अग्रसरोरुहाणि—अग्रे यानि सरांसि, तेषु रुहाणि तानि अग्रसरोरुहाणि=शिखरोपरितडागजातानि (कासारः सरसी सरः' इत्यमरः) । पद्मानि=कमलानि ('वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दमहोत्पलम्' इत्यमरः) । अधः=निम्नभागम् । परिवर्तमानः=भ्रमन् । विवस्वान्=भास्करः ('भास्वद् विवस्वत् सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः' इत्यमरः) ऊर्ध्वमुखैः—ऊर्ध्वम्=उपरि, मुखानि=वदनानि येषां तैः । मयूखैः=रश्मिभिः ('किरणोऽस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः' इत्यमरः । प्रबोधयति=विकासयति । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—कश्यपादिसप्तर्षिभिः त्रोटनावशिष्टानि हिमालयोपरिस्थितडागकमलानि सूर्यः अधः परिभ्रमन् ऊर्ध्वगतैः स्वमयूखैर्विकासयति ।

हिन्दी—जिस हिमालय के ऊपरी तड़ागों में उगे हुए, सप्तर्षियों के हाथों से तोड़े जाने से बचे हुए कमलों को नीचे परिभ्रमण करता हुआ सूर्य ऊपर से पड़ने वाली अपनी किरणों द्वारा विकसित करता है ।

टिप्पणी—सप्तर्षि—कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्वशिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः ।।१६।।

हिमालयस्य देवत्वं वर्णयति—

यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च ।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ।।१७।।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—यस्य यज्ञाङ्गयोनित्वम् धरित्रीधरणक्षमं सारं च अवेक्ष्य प्रजापतिः स्वयम् कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यम् अन्वतिष्ठत् ।

व्याख्या—यज्ञेति । यस्य=हिमालयस्य । यज्ञाङ्गयोनित्वम्–यज्ञस्य=क्रतोः; अङ्गानि=उपकरणानि सोमलतादीनि, तेषां योनिः, तस्य भावस्तत् ('यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मुखः क्रतुः' इत्यमरः) । धरित्रीधरणक्षमम्–धरित्र्याः धरणेः क्षमस्तम्=पृथ्वीधारणसमर्थम् । ('धरा धरित्री धरणी क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः' इत्यमरः) । सारम्=बलं च । अवेक्ष्य=अवलोक्य । प्रजापतिः=ब्रह्मा ('स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड्विधिः' इत्यमरः) । स्वयम्=आत्मना । कल्पितयज्ञभागम्—कल्पितः यज्ञस्य भागो यस्मिंस्तत्=निर्धारितयज्ञांशम् । शैलाधिपत्यम्—शैलानामधिपतिः शैलाधिपतिस्तस्य भावस्तत्=पर्वतप्रभुत्वम् । अन्वतिष्ठत्=अददात् । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—हिमालयस्य यज्ञोपकरणोत्पत्तिहेतुतां पृथ्वीभारधारणक्षमं बलं च विलोक्य स्वयं विधाता तं यज्ञभागयुक्तं पर्वतप्रभुत्वमददात् ।।१७।।

हिन्दी—जिस (हिमालय) की यज्ञ सामग्री उत्पन्न करने की हेतुता तथा पृथ्वी के बोझ को धारण करने में समर्थ बल को देखकर स्वयं विधाता ने उसे यज्ञभागयुक्त पर्वतों का स्वामित्व प्रदान किया ।

टिप्पणी—ब्रह्मपुराण में हिमालय को ब्रह्मा द्वारा पर्वतों का स्वामी बनाये जाने की कथा है—

शैलानां हिमवन्तं च नदीनाम् चैव सागरम् ।
गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं विधिः ।।१७।।

स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः ।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ।।१८।।

अन्वयः—मेरुसखः स्थितिज्ञः सः पितॄणां मानसीं मुनीनाम् अपि माननीयाम् आत्मानुरूपाम् मेनां कन्यां कुलस्य स्थितये विधिना उपयेमे ।

व्याख्या—स इति । मेरुसखः—मेरुः सखा यस्य सः=सुमेरुसुहृद् । स्थितिज्ञः—स्थितिं जानातीति स्थितिज्ञः=मर्यादाभिज्ञः । सः=असौ हिमालयः । पितॄणाम्=अग्निष्वात्तादीनाम् । मानसीं=मनःसङ्कल्पजाताम् । मुनीनाम्=मननशीलानाम् अपि । माननीयाम्=पूजनीयाम् । आत्मानुरूपाम्=स्वानुकूलां, कुलशीलादिगुणैः । मेनाम्=मेनानाम्नीम् । कन्याम्=दुहितरं कुमारिकाम् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुलस्य=वंशस्य । स्थितये=अवस्थानाय । विधिना=विधात्रा । उपयेमे=परिणीतवान् । अत्र परिसंख्यालंकारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—सुमेरुसखः मर्यादाभिज्ञो हिमालयः पितृणां मानसोत्पन्नां मुनीनामपि मान्यां कुलशीलादिगुणैः स्वानुरूपां कन्यां वंशस्थित्यै विधाता परिणीतवान् ।

हिन्दी—सुमेरु पर्वत के मित्र तथा मर्यादा का ज्ञान रखने वाले हिमालय ने पितरों के मन से उत्पन्न तथा मुनिजनों की भी माननीया कुलशीलादि गुणों से अपने अनुरूप मेना कन्या को कुल को स्थिर रखने के लिए ब्रह्मा द्वारा परिणीत किया ॥१८॥

टिप्पणी—ब्रह्माण्डपुराण में मेना का पितरों की मानसी कन्या होने का प्रमाण है—

तेषां तु मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः ।
पत्नी हिमवतो यस्याः पुत्रो मैनाक उच्यते ॥१९॥

कालक्रमेणाऽथ तयोः प्रवृत्ते स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसङ्गे ।
मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या गर्भोऽभवद् भूधरराजपत्न्याः ॥१९॥

अन्वयः—अथ कालक्रमेण तयोः स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसङ्गे प्रवृत्ते मनोरमं यौवनम् उद्वहन्त्याः भूधरराजपत्न्याः गर्भः अभवत् ।

व्याख्या—कालक्रमेणेति । अथ=अनन्तरम् । कालक्रमेण=समयानुसारेण । तयोः=मेनाहिमालययोः । स्वरूपयोग्ये-स्वस्य रूपस्य योग्ये=निजसौन्दर्यानुगुणे । सुरतप्रसङ्गे—सुरतस्य प्रसङ्गे=निधुवनकृत्ये । प्रवृत्ते=सञ्जाते सति। मनोरमम्=मनोहरम् । यौवनम्=तारुण्यम । उद्वहन्त्याः=धारयन्त्याः । भूधरराजपत्न्याः—भुवः धराः भूधराः, तेषां राजा, तस्य पत्नी, तस्याः=हिमालयभार्यायाः मेनायाः । ('भूभृमिरचलानन्ता' इत्यमरः । 'महीध्रे शिखरिक्ष्माभृदहार्यधरपर्वताः' इत्यमरः) । गर्भः=भ्रूणः ('गर्भो भ्रूणेऽर्भके कुक्षौ सन्धौ पनसकण्टके' इति मेदिनी । अभवत्=बभूव । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—विवाहानन्तरं समयानुसारेण मनोरमयुवावस्थायां हिमालयपत्नी मेना गर्भं धृतवती ।

हिन्दी—तदनन्तर काल-क्रम से निज सौन्दर्य-योग्य सुरत-प्रसंग होने पर मनोहर यौवन को धारण करती हुई पर्वतराज हिमालय की पत्नी मेना ने गर्भ धारण किया ॥१९॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम् ।
क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्रावविवेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ॥ २० ॥

अन्वयः—सा नागवधूपभोग्यम् अम्भोनिधिबद्धसख्यम् पक्षच्छिदि वृत्रशत्रौ क्रुद्धे अपि कुलिशक्षतानाम् अवेदनाज्ञं मैनाकम् असूत ।

व्याख्या—असूतेति । सा=मेना । नागवधूपभोग्यम्–उपभोक्तुं योग्यमुपभोग्यम्, नागवध्वाः उपभोग्यमिति तत्=नागकन्योपभोगार्हम् । ('नागं नपुंसकं रङ्गे सीसके करणान्तरे । नागपन्नगमातङ्गक्रूराचारिपु तोयदे ॥' इति मेदिनी) । अम्भोनिधिबद्धसख्यम्–अम्भसां निधिः अम्भोनिधिः=सागरः, तेन सह बद्धं=कृतम्, सख्यम्=मैत्रीभावो, येन सः तम् ('अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशम्बरम्, इत्यमरः) । पक्षच्छिदि–पक्षान् छिनत्तीति पक्षच्छित्; तस्मिन्=पतत्रच्छेत्तरि ('गरुत्पक्षच्छदाः पत्रं पतत्रं च तनूरुहम्' इत्यमरः) । वृत्रशत्रौ—वृत्रस्य=वृत्रनामराक्षसस्य, शत्रुः=रिपुः शक्रः, तस्मिन् । क्रुद्धे=कुपिते सति अपि । कुलिशक्षतानाम्–कुलिशस्य क्षतानि कुलिशक्षतानि; तेषाम्=वज्राघातानाम् ('कुलिशं भिदुरं पविः । शतकोटिः स्वरुः शम्बो दम्भोलिरशनिर्द्वयोः' इत्यमरः) । अवेदनाज्ञम्—वेदनां जानातीति वेदनज्ञः, न वेदनज्ञः अवेदनज्ञस्तम्=पीडानभिज्ञम् । मैनाकम्=मैनाकाभिधम् सूनुम् । असूत =अजनयत् । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—मैना नागकन्योपभोगार्हं जलनिधिमित्रं मैनाकं नाम पुत्रमजनयत् यः क्रुद्धेन वृत्रशत्रुणा शक्रेण पर्वतानां पक्षच्छेदनं कृतेऽपि पक्षच्छेदपीडानभिज्ञ एव ।

हिन्दी—मेना ने नागकन्या के उपभोगयोग्य, सागर से मैत्री करने वाले वृत्रशत्रु इन्द्र के क्रुद्ध होकर सभी पर्वतों के पंख काट दिए जाने पर भी पंख कटने की पीड़ा का अनुभव न करने वाले (पंख न कटनेवाले) मैनाक नामक पुत्र को जन्म दिया ।

टिप्पणी—प्राचीन काल में सभी पर्वतों के पंख थे जिनसे वे उड़कर इधर-उधर आया-जाया करते थे । इससे अनेक प्राणी नष्ट हो जाते थे । क्रुद्ध होकर इंद्र ने पर्वतों के पंख काट डाले । भयभीत होकर मैनाक वायुदेव की सहायता से लवण सागर मे कूद पड़ा तथा इस प्रकार मैनाक पक्षच्छेद से बच गया । इस प्रकार हिमालय को पुत्रवत्व मैनाक का सार्थक वर्णन किया गया है

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पिता न ज्ञायते यस्याः भ्राता यदि न विद्यते ।
नोपयच्छेत्तु तां कन्यां धर्मलोपभयात्सुधीः ॥ २० ॥

अथाऽवमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी ।
सती सती योगविसृष्टदेहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे ॥ २१ ॥

अन्वयः—अथ दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी सती पितुः अवमानेन प्रयुक्ता योगविसृष्टदेहा सती जन्मने तां शैलवधूं प्रपेदे ।

व्याख्या—अथेति । अथ=मैनाकजन्मानन्तरम् । दक्षस्य=प्रजापतेः दक्षनाम्नः । कन्या=सुता । भवपूर्वपत्नी=भवस्य=हरस्य, पूर्वपत्नी=प्रथमभार्या ('व्योमकेशो भवो भीमः स्थाणू रुद्र उमापतिः, इत्यमरः) । सती=सतीनाम्नी । पितुः=दक्षस्य । अवमानेन=तिरस्कारेण । प्रयुक्ता=प्रेरिता । योगविसृष्टदेहा—योगेन=योगक्रियया, विसृष्टः=त्यक्तः, देहः=शरीरम्, यया सा ('कायो देहः क्लीबपुंसे' इत्यमरः) । (सती) जन्मने=जननाय । तां शैलवधूम्=पर्वतपत्नीं मेनकाम् ('वधूर्जाया स्नुषा च' इत्यमरः) । प्रपेदे=प्राप । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—मैनाकोत्पत्तिपश्चात् दक्षकन्या सती पितुस्तिरस्कारेण स्वशरीरं परित्यज्य पुनः जननाय मेनकां प्राप ।

हिन्दी—तदनन्तर दक्ष प्रजापति की कन्या शिवजी की सती नामक पूर्वपत्नी ने पिता दक्ष के अपमान के कारण योग द्वारा शरीर त्याग कर पुनः जन्म लेने के लिए मेनका के समीप प्राप्त हुई ।। २१ ॥

सा भूधराणामधिपेन तस्यां समाधिमत्यामुदपादि भव्या ।
सम्यक्प्रयोगादपरिक्षतायां नीताविवोत्साहगुणेन सम्पत् ॥२२॥

अन्वयः—भव्या सा भूधराणामधिपेन समाधिमत्यां तस्यां सम्यक् प्रयोगात् अपरिक्षतायां नीतौ उत्साहगुणेन सम्पद् इव उदपादि ।

व्याख्या—सेति । भव्या=कल्याणी ('श्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभम् । 'भावुकं भाविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम् ।।' इत्यमरः) । सा=दाक्षायणी । भूधराणाम्=पर्वतानाम् । अधिपेन=स्वामिना । समाधिमत्याम्=नियमवत्याम् । तस्यां=मेनायाम् । सम्यक्प्रयोगात्=साध्वाचरणहेतोः । अपरिक्षतायाम्=अपरिभ्रष्टायाम् । नीतौ=नये । उत्साहगुणेन=उत्साहगुणशक्त्या । सम्पद् इव=सम्पत्तिरिव ('सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च' इत्यमरः) । उदपादि=अजनिष्ट । अत्रोपमालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरलार्थः—कल्याणी दाक्षायणी नगराजेन हिमालयेन मेनायामपरिभ्रष्टायां नीतौ उत्साहगुणेन श्रीरिवाजनि ।

हिन्दी—पर्वतों के राजा हिमालय ने नियमों से युक्त मेना में उत्तम आचरण के कारण उस कल्याणी दाक्षायणी को भ्रष्ट न हुई नीति में उत्साहगुण की शक्ति से सम्पत्ति के समान उत्पन्न किया ॥२२॥

प्रसन्नदिक्पांसुविविक्तवातं शङ्खस्वनाऽनन्तरपुष्पवृष्टिः ।
शरीरिणां स्थावरजङ्गमानां सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव ॥२३॥

अन्वयः—प्रसन्नदिक् पांसुविविक्तवातम् शङ्खस्वनानन्तरपुष्पवृष्टिः तज्जन्मदिनं स्थावरजङ्गमानां शरीरिणां सुखाय बभूव ।

व्याख्या—प्रसन्नदिगिति । प्रसन्नदिक्—प्रसन्ना दिक् प्रसन्नदिक् = निर्मलाशा । पांसुविविक्तवातम्—पांसुभिर्विविक्तः वातः यस्मिंस्तत्=रेणुरहितपवनम् । शंखस्वनानन्तरपुष्पवृष्टिः—शंखस्य स्वनम् = शंखध्वनिः, तस्यानन्तरं पुष्पाणां=कुसुमानां, वृष्टिः=वर्षा, यस्मिंस्तत् ('शब्दे निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनः' इत्यमरः) । तज्जन्मदिनं—तस्याः पार्वत्याः, जन्मनः=जननस्य, दिनम् = दिवसः । स्थावरजंगमानाम = चराचराणाम् । शरीरिणाम् = देहधारिणाम् । सुखाय = आनन्दाय । बभूव = अभवत् । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—तस्याः पार्वत्याः जन्मदिने दिशः प्रसेदुः, वाताः पांसुरहिताः, नभश्च शंखध्वनिपश्चात् पुष्पवृष्टियुक्तं बभूव । चराचरप्राणिनः सुखिनो जाताः ।

हिन्दी—पार्वती के जन्मदिन पर दिशायें निर्मल, वायु धूलिरहित तथा शंखध्वनि के अनन्तर पुष्पों की वृष्टि होने लगी । इस प्रकार वह दिन स्थावर तथा जंगम सभी प्रकार के जीवधारियों के लिए सुखकर बन गया ॥२३॥

तया दुहित्रा सुतरां सवित्री स्फुरत्प्रभामण्डलया चकासे ।
विदूरभूमिर्नवमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकयेव ॥२४॥

अन्वयः—स्फुरत्प्रभामण्डलया तया दुहित्रा सवित्री विदूरभूमिः नवमेघशब्दात् उद्भिन्नतया रत्नशलाया इव सुतराम् चकासे ।

व्याख्या—तयेति । स्फुरत्प्रभामण्डलया—प्रभायाः मण्डलं प्रभामण्डलम्, स्फुरत्प्रभामण्डलं यस्याः सा = लसत्कान्तिमण्डलया, तया ('स्युः प्रभा रुक् रुचिस्त्विड्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः, इत्यमरः) । तया दुहित्रा = पुत्र्या पार्वत्या ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सवित्री=जननी मेना। विदूरभूमिः=विदूरपर्वततटभूमिः नवमेघशब्दात्–नवस्य मेघस्य यः शब्दस्तस्मात् = नूतनघनरवात् ('प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः।, इत्यमरः, 'अभ्रं मेघो वारिवाहः स्तनयित्नुर्बलाहकः' इत्यमरः)। उद्भिन्नतया = निर्गतया। रत्नशलाकया—रत्नानां शलाका रत्नशलाका, तया= रत्नाङ्कुरेण। इव=यथा नितराम्। सुतराम्। चकासे = रराज। अत्रोपमालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—विदूरभूमिः नवघनगर्जनोद्भिन्नेन रत्नाङ्कुरेणेव सुतया पार्वत्या जननी मेना नितरां रराज।

हिन्दी—प्रभामण्डल से शोभित उस दुहिता (पार्वती) से जननी मेना उसी प्रकार शोभित हुई यथा नवघनगर्जन से भूमि को भेद कर निकले रत्नाङ्कुर से विदूरभूमि शोभित होती है ॥२४॥

दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान्विशेषाञ्ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि ॥२५॥

अन्वयः—लब्धोदया दिने दिने परिवर्धमाना सा चान्द्रमसी लेखा इव लावण्यमयान् विशेषान् ज्योत्स्नान्तराणि कलान्तराणि इव पुपोष।

व्याख्या—दिने दिने इति। लब्धोदया—लब्धः उदयः यया सा = प्राप्तजनना ('लब्धं प्राप्तं वित्रं भावितमासादितं भूतं च' इत्यमरः)। दिने दिने=अनुदिनम्। परिवर्धमाना=संवर्धमाना। सा=पार्वती। चान्द्रमसी—चन्द्रमसः इयम् चान्द्रमसी=ऐन्दवी। लेखा=रेखा। इव=यथा। लावण्यमयान्—प्रचुरं लावण्यमस्ति येषां ते लावण्यमयाः, तान्=प्रचुरकान्तिमयान्। विशेषान्=विशेषावयवान्। ज्योत्स्नान्तराणि—ज्योत्स्नायां=कौमुद्याम्, अन्तरम्=अन्तर्धानम्, येषां तानि ('चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इत्यमरः)। कलान्तराणि इव—अन्याः कलाः कलान्तराणि। इव=यथा। पुपोष=पुष्टवती। अत्रोपमालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—लब्धजन्मा पार्वती प्रतिदिनं वर्धमाना तथैव लावण्यमयान् अंगान् पुपोष यथा चन्द्रलेखा कौमुदीयमानानि कलान्तराणि पुष्टानि करोति।

हिन्दी—जन्म लेकर प्रतिदिन बढ़ती हुई उस (पार्वती) ने उसी प्रकार सौन्दर्यमय अङ्गों को पुष्ट किया जैसे चन्द्रलेखा अन्य कलाओं को पुष्ट करती है।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना बन्धुप्रियां बन्धुजनो जुहाव ।
उ मेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम ॥२६॥

अन्वयः—बन्धुप्रियां तां बन्धुजनः आभिजनेन नाम्ना पार्वती इति जुहाव । पश्चात् मात्रा उ मा इति तपसः निषिद्धा (सती) सुमुखी उमाऽऽख्यां जगाम ।

व्याख्या—तामिति । बन्धुप्रियाम् = बन्धुभ्यः प्रिया बन्धुप्रिया, ताम् = बन्धुजनवल्लभाम्, ताम् = उक्तां बालिकाम् । बन्धुजनः = पित्रादिजनः । आभिजनेन = कौलीनेन । नाम्ना = अभिधानेन ('आह्वाने अभिधानं च नामधेयं च नाम च' इत्यमरः) । पार्वती—पर्वतस्यापत्यं स्त्री पार्वती ('अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाऽम्बिका' इत्यमरः) । इति जुहाव = आहूतवान् । पश्चात् = तदनन्तरम् । मात्रा = जनन्या मेनया । उ = तपः, मा = न, 'तपश्चरणं मा कुरु' इति । तपसः = तपश्चरणात् । निषिद्धा = वर्जिता सती । सुमुखी—शोभनं मुखं यस्याः सा सुमुखी = सुवदना । उमाख्याम् = उमाभिधाम् । जगाम = प्राप । अत्रोपमालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—बन्धुप्रियां तां कुलानुसारं पित्रादिबन्धुजनः 'पार्वती' इति कथितवान् । तदनन्तरं जननी 'अयि पुत्रि ! तपः साधनं मा कुरु' इति निषिद्धां तामुमा इति नाम धृतवती ।

हिन्दी—बन्धुजनों को प्रिय होने के कारण पिता आदि पारिवारिक जनों ने कुल के अनुसार उस बालिका का पार्वती नाम रखा । तदनन्तर माता मेना ने तपस्या करने से मना करने के कारण सुमुखी का उमा नाम लोकप्रसिद्ध किया ॥२६॥

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम् ।
अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा ॥२७॥

अन्वयः—पुत्रवतः अपि महीभृतः दृष्टिः तस्मिन् अपत्ये तृप्तिं न जगाम । हि अनन्तपुष्पस्य मधोः द्विरेफमाला चूते सविशेषसङ्गा (भवतीति) ।

व्याख्या—महीभृत इति । पुत्रवतः = सुतवतः अपि । महीभृतः—महीं = पृथ्वीं बिभर्तीति महीभृत्, तस्य = भूपतेः हिमालयस्य । दृष्टिः = दृक् ('दृष्टिर्ज्ञानेऽक्षिदर्शने' इति हैमः) । तस्मिन् = पार्वतीरूपे । अपत्ये = सन्ताने । तृप्तिम् = तर्पणम् । न जगाम = नैव प्राप । हि = यतः । अनन्तपुष्पस्य—अनन्तानि =

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपरिमितानि, पुष्पाणि=कुसुमानि, यस्य सः, तथाविधस्य। मधोः=वसन्तस्य ('मधु क्षौद्रे जले क्षीरे मद्ये पुष्परसे मधुः। दैत्ये चैत्रे वसन्ते च जीवकोशे मधुद्रुमे ॥' इति विश्वः)। द्विरेफमाला--द्वौ रेफौ येषां ते द्विरेफाः, तेषां माला=भ्रमरपंक्तिः ('द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः' इत्यमरः। 'माला तु पंक्तौ पुष्पदामनि' इति हैमः)। चूते=आम्रे ('आम्रश्चूतो रसालः' इत्यमरः)। सविशेषसङ्गा-विशेषेण सहितः सविशेषः, सविशेषः संगः यस्याः सा=विशिष्टसहगामिनी भवतीति। प्रतिवस्तूपमालङ्कारः।

सरलार्थः—बहुपुत्रोऽपि हिमालयः पार्वत्यां विशेषं स्निह्यति स्म। यतः अन्यर्तुष्वपि बहुपुष्पेषु भ्रमरपंक्तिः मधौ रसालमञ्जरीभिः विशेषसङ्गा भवति।

हिन्दी—पुत्रवान् होते हुए भी राजा हिमालय की दृष्टि उस बालिका (पार्वती) पर तृप्ति नहीं पा सकी, क्योंकि अपरिमित पुष्पों वाली वसन्त ऋतु की भ्रमरपंक्ति आम्रमञ्जरी पर ही विशेष रूप से लटटू रहती है ॥२७॥

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी, तया स पूतश्च विभूषितश्च ॥२८॥

अन्वयः—प्रभामहत्या शिखया दीपः इव, त्रिमार्गया त्रिदिवस्य मार्ग इव संस्कारवत्या गिरा मनीषी इव तया स पूतः विभूषितश्च (बभूव)।

व्याख्या—प्रभेति। प्रभामहत्या--मह्यते पूज्यत इति महती, प्रभाभिर्महती या सा, तया=कान्तिबहुलया। शिखया=ज्वालया ('वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलार्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्' इत्यमरः) दीप इव=दीपको यथा। त्रिमार्गया-त्रयः मार्गाः यस्याः सा, तया=त्रिपथगया गंगया ('भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता भीष्मसूरपि' इत्यमरः)। त्रिदिवस्य=स्वर्गस्य ('स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः' इत्यमरः)। मार्गः=वर्त्म। इव=यथा। संस्कारवत्या=व्याकरणशुद्धया। गिरा=वाण्या। मनीषी=प्राज्ञः ('धीरो मनीषी प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः' इत्यमरः)। इव=यथा। तया=पार्वत्या। सः=असौ हिमवान्। पूतः=शुद्धान्तःकरणः। च विभूषितश्च=समलङ्कृतश्च बभूवेति। अत्र मालोपमा। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—यथा दीप्त्या दीपकः, मन्दाकिन्या नभः, व्याकरणशुद्ध-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाण्या मनीषी विभूषितः भवति तथैव पार्वत्या हिमवान् शुद्धान्तःकरणः समलंकृतश्च बभूव ।

हिन्दी—प्रकाश की अधिकता वाली शिखा से जैसे दीपक, त्रिपथगा गंगा से स्वर्ग का मार्ग (आकाश) और व्याकरणसम्मत वाणी से प्राज्ञ पुरुष सुशोभित होता है उसी प्रकार पार्वती से हिमालय पवित्र तथा सुशोभित हुए ।।२८।।

मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च ।
रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये ।।२९।।

अन्वयः— सा बाल्ये क्रीडारसं निर्विशती इव सखीनां मध्यगता (सती) मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैः च मुहुः रेमे ।

व्याख्या—मन्दाकिनीति । सा=पार्वती । बाल्ये=बाल्यावस्थायाम् । क्रीडारसम्=क्रीडानंदम् । निर्विशती इव=भुञ्जती इव ('निर्वेशो भृतिभोगयोः' इति विश्वः) । सखीनाम्=आलीनाम् ('आलिः सखी वयस्या च' इत्यमरः) । मध्यगता=मध्यस्थिता सती । मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः=मन्दाकिन्याः सैकतानि तेषु याः वेदिकास्ताभिः=गंगापुलिनपरिष्कृतभूमिभिः ('वेदिः परिष्कृता भूमिः' इत्यमरः) कन्दुकैः=कन्दुकक्रीडनैश्च । कृत्रिमपुत्रकैः=पुत्रकल्पपुत्तलिकाभिः, च । मुहुः=वारंवारम् । रेमे=चिक्रीड । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—सा बाल्ये क्रीडासुखेनानन्दमनुभवन्ती सखीनां मध्ये स्थित्वा गंगातटे निजरचितैः सैकतमण्डपैः कन्दुकक्रीडनैश्च पुत्तलिकाभिश्च वारंवारं क्रीडितवती ।

हिन्दी—वह बचपन में क्रीडारस का आनन्द लेती हुई सखियों के बीच बैठकर मन्दाकिनी के रेतीले तट पर बैठने के लिए चबूतरे (वेदिकायें) बनाती तथा गेंद और गुड़ियों से खेला करती थी ।।२९।।

तां हंसमालाः शरदीव गङ्गां महौषधिं नक्तमिवात्मभासः ।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ।।३०।।

अन्वयः—शरदि गंगां हंसमाला इव नक्तम् महौषधिम् आत्मभासः इव स्थिरोपदेशां ताम् उपदेशकाले प्राक्तनजन्मविद्याः प्रपेदिरे ।

व्याख्या—तामिति । शरदि=शरत्काले । गंगाम्=जाह्नवीम् । हंसमाला—हंसानां माला हंसमाला=चक्रांगपंक्तिः इव । ('हंसास्तु श्वेतगरुतश्चक्रांगाः

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मानसौकसः' इत्यमरः)। नक्तम्=रात्रौ। महौषधिम्=तृणविशेषम्। आत्मभास इव=स्वदीप्तयः यथा। स्थिरोपदेशाम्--स्थिरः=स्थायी, उपदेशः=शिक्षा यस्याः सा, ताम्=अचलशिक्षाम्। ताम्=पार्वतीम्। उपदेशकाले=शिक्षणावसरे। प्राक्तनजन्मविद्याः--प्राक्तनजन्मनः=पूर्वजन्मनः, विद्याः=शिक्षाः। प्रपेदिरे=प्रापुः। अत्रोपमालंकारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः--शरदि यथा हंसपंक्तयः गंगां, रात्रौ स्वदीप्तयः यथा महौषधिं प्राप्नुवन्ति तथैवाध्ययनकाले पार्वती पूर्वजन्माभ्यस्ताः सर्वाः विद्याः सारल्येन प्राप।

हिन्दी--जिस प्रकार शरत्काल में हंसों की पंक्तियाँ गंगा को प्राप्त करती हैं तथा रात्रि में प्रभा महौषधि को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार अध्ययन के अवसर पर पार्वती को पूर्वजन्म की अभ्यस्त सभी विद्यायें प्राप्त हो गयीं।

टिप्पणी--धर्मशास्त्रों तथा पुराणों में चतुर्दश विद्यायें कही गई हैं--अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः। धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्याभेदाश्चतुर्दश॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः। अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव तु ॥३०॥

असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साऽथ वयः प्रपेदे ॥३१॥

अन्वयः--अथ सा अङ्गयष्टेः असम्भृतं मण्डनम्, अनासवाख्यं मदस्य करणं कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तम् अस्त्रं बाल्यात् परं वयः प्रपेदे।

व्याख्या--असम्भृतमिति। अथ=अनन्तरम्। सा=पार्वती। अङ्गयष्टेः--अङ्गं यष्टिरिव तस्याः अङ्गयष्टेः=शरीरयष्टेः। असम्भृतम्=निसर्गसिद्धम्। मण्डनम्=भूषणम् ('अलंकारस्त्वाभरणं परिष्कारो विभूषणम्। मण्डनं च' इत्यमरः)। अनासवाख्यम्--आसव इत्याख्या यस्य तदासवाख्यम्, न आसवाख्यमनासवाख्यम्=आसवनामरहितम्। मदस्य=मत्ततायाः। करणम्=साधनम्। कामस्य=मदनस्य ('मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः। कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः पञ्चशरः स्वरः॥' इत्यमरः)। पुष्पव्यतिरिक्तम्-पुष्पेभ्यः=कुसुमेभ्यः, व्यतिरिक्तम्=भिन्नम्, तत्। अस्त्रम्=आयुधम्।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाल्यात्=शैशवात् । परम्=अधिकम् । वयः=आयुः, तारुण्यमिति । प्रपेदे = प्राप । अत्र परिणामालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः--ततः सा शरीरस्य नैसर्गिकं विभूषणं, मत्तताया आसवहीनं साधनं, कामस्य च पुष्पभिन्नमायुधं बाल्यानन्तरं यौवनं प्राप ।

हिन्दी--अनन्तर पार्वती ने शरीरयष्टि का स्वाभाविक अलंकरण, आसवरहित मद का साधन, मदन का पुष्पों के अतिरिक्त आयुध बाल्यकाल के बाद आने वाला यौवन प्राप्त किया ।।३१।।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवाऽरविन्दम् ।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ।।३२।।

अन्वयः—नवयौवनेन विभक्तं तस्याः वपुः तूलिकया उन्मीलितं चित्रम् इव सूर्यांशुभिः भिन्नम् अरविन्दम् इव चतुरस्रशोभि बभूव ।

व्याख्या—उन्मीलितमिति । नवयौवनेन--नवं च तद् यौवनम्, तेन=नूतनतारुण्येन = विभक्तम्=अभिव्यञ्जितम् । तस्याः=पार्वत्याः । वपुः=शरीरम् ('गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः) । तूलिकया=कूचिकया । उन्मीलितम् =उल्लिखितम् । चित्रम् = आलेख्यम् इव । सूर्यांशुभिः--सूर्यस्य अंशुभिः सूर्यांशुभिः=रविकिरणैः ('सूरसूर्यार्यमादित्यद्वादशात्मदिवाकराः' इत्यमरः 'किरणोंऽशुमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः' इत्यमरः) । भिन्नम्=सम्फुल्लम् । अरविन्दम् = कमलम् । इव=यथा । चतुरस्रशोभि=सर्वतः सुन्दरम् । बभूव = अभवत् । अत्र मालोपमा । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—नवयौवनपूर्णपार्वत्याः शरीरं तूलिकया चित्रितमालेख्यमिव, रविकिरणविनैव विकसितं कमलमिव सर्वतः शोभि बभूव ।

हिन्दी--नवयौवन से विभक्त उसका शरीर तूलिका द्वारा प्रकाशित चित्र तथा सूर्य की किरणों के बिना ही खिले कमल के समान चारों ओर से सुन्दर हो उठा ।।३२।।

अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ ।
आजह्नतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम् ।।३३।।

अन्वयः--अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिः निक्षेपणात् रागम् उद्गिरन्तौ इव तच्चरणौ पृथिव्याम् अव्यवस्थां स्थलारविन्दश्रियम् आजह्नतुः ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—अभ्युन्नतेति। अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिः--अङ्गुष्ठयोः नखौ अङ्गुष्ठनखौ, अभ्युन्नतौ च तौ अङ्गुष्ठनखौ अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखौ, तयोः प्रभास्ताभिः=अभ्युच्छ्रिताङ्गुष्ठनखरदीप्तिभिः ('पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः)। निक्षेपणात्=निर्भरन्यासात् हेतोः। रागम्=लौहित्यम्। उद्गिरन्तौ=उद्वमन्तौ। इव=यथा। तच्चरणौ-तस्याः=पार्वत्याः, चरणौ=पादौ। पृथिव्याम्=भूमौ ('गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही' इत्यमरः)। अव्यवस्थाम्=व्यवस्थारहितां, सञ्चारिणीम्। स्थलारविन्दश्रियम्--स्थलस्यारविन्दं स्थलारविन्दम्, तस्य श्रीस्ताम्=स्थलकमलशोभाम् ('लक्ष्मीसरस्वती धात्रीवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु। उपकरणवेशरचनाविधानेषु च श्रीरिति प्रथिता' इति व्याडिः)। आजह्नतुः=अनुचक्रतुः। अत्र निदर्शनालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—पार्वत्याश्चरणौ भुवि निक्षेपहेतोः पूर्वसेवितं लाक्षारसं प्रकृत्यारक्तवर्णैरङ्गुष्ठानखकान्तिभिरुद्वमन्ताविव निरन्तरं स्थलकमलशोभामाहृतवन्तमिति भावः।

हिन्दी—पार्वती के उन्नत अंगूठों के नखों की कांति से पूर्वसेवित लाक्षारस (महावर) को मानों उगलते हुए दोनों चरण पृथ्वी पर अव्यवस्थित स्थलकमल की शोभा प्राप्त करने लगे ॥३३॥

टिप्पणी—जिस कन्या के पाँवों के अंगूठों के नख ऊँचे तथा तलुवे रक्त वर्ण हों वह ऐश्वर्यवती होती है, ऐसा सामुद्रिकशास्त्र में कहा गया है--

यस्याः रक्ततलौ पादावुन्नताग्रौ तलस्पृशौ।
निगूढगुल्फौ निहितौ सा स्यान्नृतिसम्मता ॥३३॥

सा राजहंसैरिव सन्नताङ्गी गतेषु लीलाञ्चितविक्रमेषु।
व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धैरादित्सुभिर्नूपुरसिञ्जितानि ॥३४॥

अन्वयः—प्रत्युपदेशलुब्धैः नूपुरसिञ्जितानि आदित्सुभिः राजहंसैः सन्नतांगी सा लीलाञ्चितविक्रमेषु गतेषु व्यनीयत इव।

व्याख्या—सेति। प्रत्युपदेशलुब्धैः-प्रतिरूपः उपदेशः प्रत्युपदेशः, तस्मिन् लुब्धास्तैः=अनुकूलोपदेशलोलुपैः। नूपुरसिञ्जितानि--नूपुरयोः सिञ्जितानि नूपुरसिञ्जितानि, तानि=मञ्जीरशब्दान्('पादाङ्गदं तुलाकोटि मञ्जीरो नूपुरो-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्त्रियाम्' इत्यमरः)। आदित्सुभिः—आदातुमिच्छन्तीत्यादित्सवः, तैः=जिघृक्षुभिः। राजहंसैः=मरालैः। सन्नताङ्गी-सन्नतमङ्गं यस्याः सा=सन्नताङ्गी। सा=पार्वती। लीलाञ्चितविक्रमेषु—लीलाभिः अञ्चिताः विक्रमाः येषु तानि=विलासाञ्जितपादन्यासेषु (लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितम्। मोट्टायितं कुट्टमितं विब्बोको गलितं तथा ॥ विहृतं चेति विज्ञेयाः दश स्त्रीणां स्वभावजाः ॥) गतेषु=गमनेषु। व्यनीयत इव=विनीताः किम्, अन्यथा कथमेतस्याः हंसगमनम्। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—मधुरगतिशिक्षणकामा सा राजहंसैर्विलासयुक्तपादन्यासं किल गमनेऽशिक्षत्।

हिन्दी—बदले में शिक्षा लेने के लिए ललचाये राजहंसों से जो कि नूपुरध्वनि सीखना चाहते थे, नम्रवदना पार्वती ने विलासयुक्त चरणविन्यास चालों से उन्हें शिक्षा दी।

टिप्पणी—शिक्षा प्राप्त करने के केवल तीन प्रकारों का निर्देश शास्त्रों में दिया गया है—

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपलभ्यते ॥ ३४ ॥

वृत्तानुपूर्वे च न चाऽतिदीर्घे जङ्घे शुभे सृष्टवतस्तदीये।
शेषाङ्गनिर्माणविधौ विधातुर्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—वृत्तानुपूर्वे न च अतिदीर्घे शुभे तदीये जंघे सृष्टवतः विधातुः शेषाङ्गनिर्माणविधौ उत्पाद्ये लावण्ये यत्नः आस इव।

व्याख्या—वृत्तेति। वृत्तानुपूर्वे-वृत्ते च तेऽनुपूर्वे वृत्तानुपूर्वे=गोपुच्छाकारे ('वर्तुलं निस्तुलं वृत्तम्' इत्यमरः)। न च अतिदीर्घे=नैवातिविशाले। शुभे=उत्तमे। तदीये=तस्याः पार्वत्याः। जंघे=जघनद्वये। सृष्टवतः=निर्मितवतः। विधातुः=विधेः। शेषाङ्गनिर्माणविधौ-शेषाणामङ्गानां निर्माणस्य विधिस्तस्मिन्=अवशिष्टावयवरचनाविधौ। उत्पाद्ये—उत्पादयितुं योग्यमुत्पाद्यम्, तस्मिन्=निर्माणार्थं पुनरुत्पादनीये। लावण्ये=कान्तिविशेषे। यत्नः=प्रयासः। आस इव=बभूव इव। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरलार्थः—पार्वत्याः गोपुच्छाकारे शोभने जंघे निर्मितवतो विधातुः तस्या अवशिष्टाङ्गनिर्माणविधौ उत्पादनीये कान्तिविशेषे खलु प्रयासो बभूव।

हिन्दी—गोपुच्छाकार जो कि अधिक लम्बी भी नहीं, सुन्दर पार्वती की जांघे बनाने वाले विधाता का प्रयास उसके शेष अङ्गों के निर्माण की विधि में उत्पादनीय कान्ति-विशेष में मानों रहा हो ॥ ३५ ॥

नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदलीविशेषाः।
लब्ध्वाऽपि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः ॥ ३६॥

अन्वयः—नागेन्द्रहस्ताः त्वचि कर्कशत्वात् कदलीविशेषाः एकान्तशैत्यात् लोके परिणाहि रूपं लब्ध्वा अपि तदूर्वोः उपमानबाह्याः जाताः।

व्याख्या—नागेन्द्रेति। नागेन्द्रहस्ताः—नागानामिन्द्राः नागेन्द्रास्तेषां हस्ताः=ऐरावतादिकरिणः ('मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी' इत्यमरः)। त्वचि=चर्मणि। कर्कशत्वात्=कठोरत्वात् ('कर्कशं कठिनं क्रूरं कठोरे निष्ठुरं दृढम्' इत्यमरः)। कदलीविशेषाः—कदलीनां विशेषाः=विशिष्टरम्भाः। एकान्तशैत्यात्—एकान्तं यथा स्यात् तथा शैत्यम्, तस्मात्=नियतशीतत्वहेतोः। लोके=संसारे। परिणाहि=विशालम् ('परिणाहो विशालता' इत्यमरः)। रूपम्=स्वरूपम्। लब्ध्वा=प्राप्य अपि। तदूर्वोः—तस्याः पार्वत्याः, ऊर्वोः=जंघद्वयोः ('सक्थि क्लीबे पुमानूरुः' इत्यमरः)। उपमानबाह्याः—बहिर्भावा बाह्याः, उपमाने बाह्याः इत्युपमानबाह्याः=उपमानबहिर्भूताः। जाताः=बभूवुः। अत्र व्यतिरेकालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—लोके पार्वत्या ऊरुद्वयोरुपमा करिराजकरैश्चर्मकर्कशत्वान्नैव देया। कदलीविशेषाः अपि अत्यन्तशीतत्वात् विशालरूपं प्राप्यापि तदुपमानार्हाः न सन्ति।

हिन्दी—गजराजों की सूड़ें त्वचा से कठोर होने के कारण तथा कदलीस्तम्भ अत्यन्त शीतल होने के कारण विशाल रूप पाकर भी पार्वती की ऊरुद्वय के उपमान न बन सके ॥ ३६ ॥

एतावता नन्वनुमेयशोभि काञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः।
आरोपितं यद्गिरिशेन पश्चादनन्यनारीकमनीयमङ्कम् ॥ ३७ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः— यत् पश्चात् गिरिशेन अनन्यनारीकमनीयम् अङ्कम् आरोपितम्, अनिन्दितायाः काञ्चीगुणस्थानम् एतावता ननु अनुमेयशोभि ।

व्याख्या—एतावतेति । यत्पश्चात्—यत्=यतः; विवाहस्य पश्चात्=अनन्तरम् । गिरिशेन=शम्भुना ('गिरीशो गिरिशो मृडः' इत्यमरः) । अनन्यनारीकमनीयम्=अन्यासां नारीणां कमनीयः न भवतीति अनन्यनारीकमनीयस्तम्=न परदारावाञ्छनीयम् ('स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः)। अङ्कम्=उत्सङ्गम् । आरोपितम्=अधिष्ठापितम् । अनिन्दितायाः न निन्दिता अनिन्दिता, तस्याः=अनवद्यायाः । काञ्चीगुणस्थानम्=रशनादामस्थलम् ('काञ्ची स्यान्मेखला दाम्नि प्रभेदे नगरस्य च' इति मेदिनी)। एतावता=इयता चिह्नेन । ननु=किल । अनुमेयशोभि=अनुमातुं योग्याऽनुमेया, अनुमेया चासौ शोभा अस्यास्तीत्यनुमेयशोभि=अनुमानयोग्यकांति अस्तीति । अत्रानुमानालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः विवाहानन्तरं शिवः परस्त्रीदुर्लभकमनीये उत्सङ्गेऽनिन्द्यायास्तस्याः पार्वत्याः रशनादामस्थलमारोपितम् एतावतैव तच्छोभाऽनुमेया ।

हिन्दी – विवाह के पश्चात् शिवजी ने (अपनी) एकनारी कमनीय गोद में उस अनिन्द्य सुन्दरी पार्वती के काञ्चीदाम स्थल (नितम्ब भाग) को आरोपित किया । इतने से ही वास्तव में उसकी शोभा का अनुमान किया जा सकता है ।। ३७ ।।

तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं रराज तन्वी नवलोमराजिः ।
नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेरिवार्चिः ।।३८।।

अन्वयः—नीवीम् अतिक्रम्य नतनाभिरन्ध्रम् प्रविष्टा तन्वी तस्याः नवलोमराजिः सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेः अर्चिरिव रराज ।

व्याख्या—तस्या इति । नीवीम्=वस्त्रग्रन्थिम् ('स्त्रीकटीवस्त्रबन्धेऽपि नीवी परिषणेऽपि च' इत्यमरः) । अतिक्रम्य=उल्लंघ्य । नतनाभिरन्ध्रम्-नाभेः रन्ध्रं नाभिरन्ध्रम्, नतं च तन्नाभिरन्ध्रम्, तत्=अवनतनाभिछिद्रम् ('छिद्रं निर्व्यथनं रोकं रन्ध्रं श्वभ्रं वपा सुषिः' इत्यमरः)। प्रविष्टा=प्रवेशं गता । तन्वी=सूक्ष्मा ('स्तोकाल्पचुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु' इत्यमरः) । तस्याः=पार्वत्याः । नवलोमराजिः-नवा लोमराजिरिति नवलोमराजिः=

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नूतनरोमपंक्तिः ('तनूरुहं रोम लोम' इत्यमरः) । सितेतरस्य—सिताद् इतरस्य = श्वेतभिन्नस्य, असितस्य । तन्मेखलामध्यमणेः—तस्याः मेखलायाः मध्यमणिस्तस्य = पार्वत्याः काञ्चीमध्यमणेः । अर्चिः = कान्तिः इव । रराज = शुशुभे । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—कटिवस्त्रग्रन्थिमुल्लंघ्य नाभिछिद्रगता तस्याः क्षीणा रोमराजिः मेखलामध्यगतस्येन्द्रनीलमणेरिव शुशुभे ।

हिन्दी—कटिवस्त्र की गाँठ को पारकर गंभीर नाभिछिद्र में प्रविष्ट हुई उसकी सूक्ष्म रोम-पंक्ति उसकी करधनी के मध्य जटित कृष्ण नीलमणि की कान्ति सदृश शोभित होती थी ।। ३८ ।।

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला ।
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ।। ३९ ।।

अन्वयः—वेदिविलग्नमध्या सा बाला मध्येन चारु वलित्रयं कामस्य आरोहणार्थम् नवयौवनेन प्रयुक्तं सोपानम् इव बभार ।

व्याख्या—मध्येनेति । वेदिविलग्नमध्या—वेदिरिव विलग्नः मध्यः यस्याः सा = परिष्कृतभूमिकृशमध्या । सा = पार्वती बाला, मध्येन = मध्यभागेन । चारु = सुन्दरम् ('सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्' इत्यमरः) । वलित्रयम्—वलीनां त्रयं वलित्रयम् = वलित्रिकम् ('करोपहारयोः पुंसि वलिः प्राण्यङ्गजे स्त्रियाम्' इत्यमरः) । कामस्य = मदनस्य ('कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः पञ्चशरः स्मरः' इत्यमरः) । आरोहणार्थम् = आरोढुम् । नवयौवनेन = नूतनतारुण्येन । प्रयुक्तम् = निर्मितम् । सोपानम् इव = आरोपणमिव । बभार = धृतवती । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—कृशोदरी बाला पार्वती मध्येन चारु त्रिवलीं मदनस्यारोढुं नूतनतारुण्येन रचितं सोपानमार्गमिव दधार ।

हिन्दी—कृशोदरी बाला पार्वती ने मध्यभाग से सुन्दर त्रिवली को कामदेव के आरोहण के लिए नवयौवन द्वारा प्रयुक्त सोपान मार्ग के समान धारण किया ।। ३९ ।।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्योऽन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् ।
मध्ये तथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥४०॥

अन्वयः--अन्योऽन्यम् उत्पीडयत् पाण्डु उत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं तथा प्रवृद्धम् श्याममुखस्य तस्य मध्ये यथा मृणालसूत्रान्तरम् अपि अलभ्यम् (आसीत्)।

व्याख्या--अन्योऽन्यमिति । अन्योऽन्यम्=परस्परम् । उत्पीडयत्=उपरुन्धत् । पाण्डु=पाण्डुवर्णम् । उत्पलाक्ष्याः—उत्पलमिवाक्षिणी यस्यास्तस्याः=कमलनयनायाः । स्तनद्वयम्=पयोधरयुगलम् । तथा=तेन प्रकारेण । प्रवृद्धम्=विपुलतामुपगतम् । श्याममुखस्य=श्यामं मुखं यस्य सः, तस्य=कृष्णमुखस्य । तस्य=पयोधरयुगलस्य । मध्ये=मध्यभागे । यथा=येन प्रकारेण । मृणालसूत्रान्तरम्=बिसतन्तुयात्रावकाशः अपि । अलभ्यम्—लब्धुं शक्यं लभ्यम्; न लभ्यमलभ्यम्=प्राप्तुमशक्यम् आसीत् । अत्रातिशयोक्त्यलङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः--कमलनयनायाः पार्वत्याः परस्परं पीडयतः गौरश्याममुखौ स्तनौ तथा प्रवृद्धौ यथा बिसतन्तुमध्यमपि प्राप्तुमशक्यमासीत् ।

हिन्दी--कमलाक्षी पार्वती के पाण्डु तथा श्याममुख कुचयुगल परस्पर में उस प्रकार बढ़े हुए थे कि उसके बीच में मृणालतन्तु के बराबर का भी अन्तर नहीं पाया जा सकता था ॥४०॥

शिरीषपुष्पाऽधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः ।
पराजितेनाऽपि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन ॥४१॥

अन्वयः—तदीयौ बाहू शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ इति मे वितर्कः । पराजितेन अपि मकरध्वजेन यौ हरस्य कण्ठपाशौ कृतौ ।

व्याख्या—शिरीषेति । तदीयौ=तस्याः पार्वत्याः । बाहू=भुजौ ('भुजबाहू प्रवेष्टो दोः स्यात्' इत्यमरः) । शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ—शिरीषस्य पुष्पम् तेनाधिकं सौकुमार्यम् ययोस्तौ मण्डितकुसुमाधिककोमलौ । इति=एवम् । मे=मम । वितर्कः=ऊहः । यतः पराजितेन अपि=विजितेनापि । मकरध्वजेन=मदनेन । यौ हरस्य=शिवस्य । कण्ठपाशौ—कण्ठस्य पाशौ कण्ठपाशौ=गलबन्धनरज्जू । कृतौ=विहितौ । अत्र व्यतिरेकालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः--पार्वत्याः बाहू शिरीषकुसुमादप्यधिकसुकुमाराविति मे विचारोऽस्ति । यतः पराजितोऽपि कामदेवस्तौ भुजौ हरस्य गलबन्धनरज्जू कृतवान् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी--पार्वती की दोनों भुजायें शिरीष पुष्प से भी अधिक कोमल थीं ऐसा मेरा तर्क है; क्योंकि पराजित होकर भी कामदेव ने उनकी भुजाओं को शिवजी का कण्ठ-पाश बना दिया ॥४१॥

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य ।
अन्योऽन्यशोभाजननाद्बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः ॥४२॥

अन्वयः--स्तनबन्धुरस्य तस्याः कण्ठस्य निस्तलस्य मुक्ताकलापस्य च अन्योऽन्यशोभाजननात् भूषणभूष्यभावः साधारणः बभूव ।

व्याख्या--कण्ठस्येति । स्तनबन्धुरस्य-स्तनाभ्यां=पयोधराभ्यां, बन्धुरः= उन्नतः, तस्य ('बन्धुरं तून्नतानतम्' इत्यमरः) । तस्याः=पार्वत्याः । कण्ठस्य=गलदेशस्य । निस्तलस्य=वर्तुलस्य । मुक्ताकलापस्य=मौक्तिकाभरणस्य च । अन्योऽन्यशोभाजननात्--अन्योऽन्ययोः=परस्परयोः शोभा अन्योन्यशोभा, तस्याः जननं, तस्मात्=परस्परकान्तिजननात् ('शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः' इत्यमरः) । भूषणभूष्यभावः=भूषणं च भूष्यश्च भूषणभूष्यौ, तयोः भावः=अलङ्करणालङ्कार्यभावः । साधारणः=सामान्यः । बभूव=अभवत् । अत्रान्योऽन्यालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः--पार्वत्याः उन्नतपयोधरस्य कण्ठस्य वर्तुलस्य मौक्तिकाभरणस्य च परस्परशोभोत्पादनहेतोरलङ्करालङ्कार्यभावः सामान्यतामगच्छत् ।

हिन्दी--पार्वती के उन्नत पयोधर कण्ठ की तथा वर्तुलाकार मौक्तिकाभरण की परस्पर शोभा की उत्पत्ति के कारण अलंकार तथा अलंकार्य भाव के समान था ॥४२॥

चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥४३॥

अन्वयः--लोला लक्ष्मीः चन्द्रं गता (सती) पद्मगुणान् न भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीम् अभिख्यां न (भुङ्क्ते) उमामुखं प्रतिपद्य तु द्विसंश्रयां प्रीतिम् अवाप ।

व्याख्या--चन्द्रमिति । लोला=चपला ('चलनं कम्पनं कम्पं चलं लोलं चलाचलम् । चञ्चले तरलं चैव पारिप्लवपरिप्लवे ॥' इत्यमरः) । लक्ष्मीः= श्रीः । चन्द्रं=विधुम् ('हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः' इत्यमरः) । गता=प्राप्ता (सती) । पद्मगुणान्=कमलगुणान् । न भुङ्क्ते=नानुभवति ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पद्माश्रिता--पद्मेनाश्रिता=कमलाश्रयं गता। चान्द्रमसीम्=चन्द्रसम्बधिनीम्। अभिख्यां=प्रसिद्धिम् ('अभिख्या त्वभिधाने स्याच्छोभायां च यशस्यपि' इति मेदिनी)। न भुङ्क्ते=नानुभवति। उमामुखम्—उमायाः=पार्वत्याः, मुखं=वदनम् तत्। प्रतिपद्य=सम्प्राप्य तु। द्विसंश्रयाम्--द्वौ=पद्मचन्द्रौ, संश्रयौ=आश्रयस्थानौ, यस्याः सा, ताम्। प्रीतिम्=प्रमोदम्। अवाप=प्राप। अत्र व्यतिरेकालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः-चञ्चला लक्ष्मीः रात्रौ पद्मगुणान्नानुभवति, दिवा च पद्माश्रिता चान्द्रमसीं श्रियं नानुभवति। पार्वतीमुखं प्राप्य तु द्विविधामपि प्रीतिं प्राप।

हिन्दी--चञ्चल लक्ष्मी (रात्रि में) पूर्ण चन्द्र का आश्रय लेकर कमल के गुणों का अनुभव नहीं करती है तथा (दिन में) कमल का आश्रयण कर चन्द्रमा आह्लादकत्वादि गुणानुभव नहीं करता है। परन्तु पार्वती के मुख को पाकर चन्द्रमा तथा कमल दोनों ही आनन्द को प्राप्त करते थे ॥४३॥

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य ॥४४॥

अन्वयः—यदि पुष्पं प्रवालोपहितं (स्यात्), वा मुक्ताफलं स्फुटविद्रुमस्थं स्यात् ततः विशदस्य ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः तस्याः स्मितस्य अनुकुर्यात्।

व्याख्या—पुष्पमिति। यदि=चेत्। पुष्पम्=कुसुमम्। प्रवालोपहितं-प्रवाले उपहितम् प्रवालोपहितम्, तत्=विद्रुमनिहितम् (प्रवालो वल्लकी चण्डे विद्रुमे बालपल्लवे' इति विश्वः)। स्यात्=भवेत्। वा=अथवा, मुक्ताफलम्=मौक्तिकम्। स्फुटविद्रुमस्थम्—स्फुटश्चासौ विद्रुमस्तम् ('अथ विद्रुमः पुंसि प्रवालं पुन्नपुंसकम्' इत्यमरः)। स्यात्। ततः=तर्हि। विशदस्य=स्फुटस्य शुभ्रस्य वा। ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः=ताम्रश्चासावोष्ठस्ताम्रौष्ठः; तस्मिन् पर्यस्तरुचा यस्य तत्, तस्य=अरुणाधरपर्यस्तकान्तेः। तस्याः=उमायाः। स्मितस्य=मन्दहासस्य। अनुकुर्यात्=अनुकरणं कुर्यात्। अत्र प्रतीपालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः—यदि श्वेतपुष्पं विद्रुमनिहितं स्यात्, यदि वा मौक्तिकं निर्मलं विद्रुमनिहितं स्यात् तदा विशदस्य स्मितस्यारुणाधरायास्तस्याः समतां कुर्यात्।

हिन्दी--यदि श्वेत पुष्प नव पल्लवनिहित हो तथा निर्मल मोती मूंगे पर रखा हो तो विशद अरुणाधर कान्ति वाली उस (पार्वती) की मुस्कान का शायद अनुकरण कर सके ॥४४॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि ।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना ॥४५॥

अन्वयः—अभिजातवाचि तस्याम् अमृतस्रुता इव स्वरेण प्रजल्पितायां (सत्याम्) अन्यपुष्टा अपि ताड्यमाना वितन्त्रीः इव श्रोतुः प्रतिकूलशब्दा (भवति)।

व्याख्या—स्वरेणेति । अभिजातवाचि—मधुरवाण्याम् ('ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती' इत्यमरः)। तस्याम् = पार्वत्याम् । अमृतस्रुता इव = अमृतं स्रवतीति तत्, तेन = सुधास्राविणा यथा । स्वरेण = रवेण । प्रजल्पितायाम् = आलपन्त्यां सत्याम् । अन्यपुष्टा—अन्यैः = अपरैः काकैः, पुष्टा = कृतपोषा अपि । ताड्यमाना = आहन्यमाना । वितन्त्रीः इव = विषमबद्धतन्त्रीः इव । श्रोतुः = आकर्णयितुः । प्रतिकूलशब्दा—प्रतिकूलः = विपरीतः, शब्दः = ध्वनिर्यस्याः सा । भवतीति । अत्रोपमालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—मृदुभाषिण्यामुमायां सुधास्राविणध्वनिनाऽऽलपन्त्यां सत्यां परपोषितापि ताड्यमाना विषमबद्धतन्त्रीरिवाकर्णयितुः कटुशब्दा भवति ।

हिन्दी—मृदुभाषिणी पार्वती के भाषण में अमृत टपकाने वाले स्वर के समान मधुर आलाप में प्रसिद्ध परपोषित कोयल का स्वर भी बजायी गई विणीक अनजाने बजायी गई वीणा के समान कानों को अप्रिय लगत है ॥४५॥

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या ।
तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः ॥४६॥

अन्वयः—प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम् अधीरविप्रेक्षितम् आयताक्ष्या तया मृगाङ्गनाभ्यः गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः ततः गृहीतं नु ।

व्याख्या—प्रवातेति । प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम्—प्रकृष्टो वातः यस्मिन् तत् प्रवातम् । नीलं च तदुत्पलं नीलोत्पलम्, प्रवातं नीलोत्पलं प्रवातनीलोत्पलं, विशेषान्निर्गतं निर्विशेषम्, प्रवातनीलोत्पलात् निर्विशेषं तत्= प्रभूतवायुस्थलनीलकमलान्निर्भिन्नम् । अधीरविप्रेक्षितम्—अधीरं च तद् विप्रेक्षितं, तत् = अधीरतयावलोकितम् । आयताक्ष्या—आयते अक्षिणी यस्याः सा, तया = विशालनेत्रया । तया = पार्वत्या । मृगाङ्गनाभ्यः—मृग्यन्त इति मृगास्तेषामङ्गनास्ताभ्यः = हरिणीभ्यः । गृहीतं नु = अभ्यस्तं नु । मृगाङ्गनाभिः = हरिणीभिः । ततः = तस्याः । गृहीतं नु = अनुशीलितं नु । अत्रोत्प्रेक्षासन्देहालङ्कारयोः संकरः । उपजातिवृत्तम् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरलार्थः--मन्दपवनप्रकम्पितं नीलकमलसदृशमधीरतया पार्वत्याऽवलोकितं मृगीभ्यः गृहीतं स्यात् मृगीभिश्च तदवलोकितं पार्वत्याः गृहीतं स्यात् ।

हिन्दी--प्रकृष्ट पवन से हिलाये नील कमल के समान अधीरता से देखना निश्चित रूप से विशाल नयनों वाली पार्वती ने हरिणियों से तथा हरिणियों ने पार्वती से ग्रहण किया होगा ।।४६।।

तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयोर्या ।
तां वीक्ष्य लीलाचतुरामनङ्गः स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ।।४७।।

अन्वयः—आयतलेखयोः तस्याः भ्रुवोः शलाकाञ्जननिर्मिता इव या कान्तिः लीलाचतुराम् तां वीक्ष्य अनङ्गः स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ।

व्याख्या--तस्या इति । आयतलेखयोः--आयता लेखा ययोस्तयोः=विशालरेखयोः । तस्याः=पार्वत्याः । भ्रुवोः=भ्रूद्वयोः । शलाकाञ्जननिर्मिता इव—शलाकायाः अञ्जनं शलाकाञ्जनम्, तेन निर्मिता=तूलिकाकज्जलरचिता, इव=यथा । या कान्तिः=या शोभा । लीलाचतुराम्—लीलाभिः=क्रीडाभिश्चतुरा=दक्षा, ताम् । ताम्=पार्वतीम् । वीक्ष्य=अवलोक्य । अनङ्गः=मदनः । स्वचापसौन्दर्यमदम्—स्वस्य चापः स्वचापः, तस्य यत् सौन्दर्यं, तस्य मदस्तम्=निजधनुर्लावण्याभिमानम् ('धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकमि'त्यमरः) । मुमोच=मुक्तवान् । अत्रातिशयोक्त्यलङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः--कामदेवः पार्वत्या विशालरेखाभ्रुवोः तूलिकाञ्जनरचित्तकान्तिः क्रीडाकुशलां तामवलोक्य निजधनुलावण्याभिमानं तत्याज ।

हिन्दी—पार्वती की आयत रेखा वाली भौंहों की तूलिका द्वारा खींची चित्ररेखा की भाँति कान्ति को देखकर कामदेव ने अपने धनुष की सुन्दरता के अभिमान का परित्याग कर दिया ।।४७।।

लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः ।
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्बालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः ।।४८।।

अन्वयः—तिरश्चां चेतसि लज्जा स्यात् यदि, असंशयं पर्वतराजपुत्र्याः तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य चमर्यः बालप्रियत्वं शिथिलं कुर्युः ।

व्याख्या—लज्जेति । तिरश्चाम्=तिर्यग्योनिजानां पशुपक्षिणाम् । चेतसि=मनसि ('चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लज्जा=व्रीडा ('मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा' इत्यमरः ।) स्यात्=भवेत् । यदि=चेत् । (तर्हि) असंशयम्=निःसन्देहम् । पर्वतराजपुत्र्याः=हिमालयकन्यायाः पार्वत्याः । तं=प्रसिद्धम् । केशपाशम्=कुन्तलसमूहम् । प्रसमीक्ष्य=अवलोक्य । चमर्यः=मृगीविशेषाः । बालप्रियत्वम्=केशप्रियताम् । शिथिलम्=इलथम् । कुर्युः=विदध्युः, अनादरं कुर्युरिति । अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—यदि पशुपक्षिणां हृदि लज्जा स्यात् तर्हि नगराजपुत्र्याः पार्वत्याः केशराशिं दृष्ट्वा चमरीगोविशेषाः स्वबालप्रियतां निःसन्देहं व्रीडया शिथिलयन्ति ।

हिन्दी—पशु-पक्षियों के चित्त में यदि लज्जा होती तो निःसन्देह पर्वतराज-पुत्री के केशपाश देखकर चमरी गायें अपनी बाल-प्रियता को शिथिल कर देतीं ।४८।।

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ।।४९।।

अन्वयः—सा विश्वसृजा एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षया इव प्रयत्नात् यथाप्रदेशं विनिवेशितेन सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन निर्मिता ।

व्याख्या—सर्वेति । सा=असौ पार्वती । विश्वसृजा—विश्वं सृजतीति विश्वसृट्, तेन=विधात्रा ('स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड्विधिः ।' इत्यमरः) । एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षया इव-एकस्थे=एकस्थान इव, सौन्दर्यं=लावण्यम्, द्रष्टुमिच्छा=अवलोकयितुमभिलाषा, तया तया । प्रयत्नात्=प्रयासात् । यथाप्रदेशम्=यथास्थानम् । विनिवेशितेन=स्थापितेन । सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन—सर्वाणि च तानि उपमाद्रव्याणि सर्वोपमाद्रव्याणि, तेषां समुच्चयः, तेन=निखिलोपमानपदार्थसमाहारेण ('समाहारः समुच्चयः ।' इत्यमरः) । निर्मिता=रचिता । अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—विधात्रा एकत्रलावण्यावलोकनेच्छया यथाप्रयासात् यथास्थानं स्थापितेन निखिलपदार्थसमाहारेण पार्वती निर्मिता ।

हिन्दी—पार्वती की विश्व की सृष्टि करने वाले विधाता ने एक ही स्थान पर सौन्दर्य को देखने की इच्छा से मानों प्रयत्न करके यथास्थान समस्त पदार्थों के समूह का निवेष कर रचना की ।।४९।।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तां नारदः कामचरः कदाचित्कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे ।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य ॥५०॥

अन्वयः—कदाचित् कामचरः नारदः किल तां कन्यां पितुः समीपे प्रेक्ष्य प्रेम्णा हरस्य शरीरार्धहराम् एकवधूं भवित्रीं समादिदेश ।

व्याख्या—तामिति । कदाचित्=कदापि । कामचरः—कामेन=स्वेच्छया स्वच्छन्दं वा, चरतीति=विचरतीति सः । नारदः=देवर्षिः । किल=खलु । तां=पार्वतीम् । कन्याम्=सुताम् । पितुः=जनकस्य हिमालयस्य । समीपे=पार्श्वे । प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा । प्रेम्णा=प्रीत्या । हरस्य=शिवस्य । शरीरार्धहराम्-शरीरस्य अर्धं हरतीति सा, ताम्=वामाङ्गहराम् । एकवधूम्=अद्वितीयपत्नीम् । भवित्रीम्=सम्भाविनीम् समादिदेश=आदिष्टवान् ।

सरलार्थः—एकदा स्वेच्छाचारी नारदः पितुर्हिमालयस्य पार्श्वे पार्वतीमवलोक्याकथयत् यदियं ते कन्या पार्वती शिवस्य वामाङ्गहराऽद्वितीया भार्या भविष्यति ।

हिन्दी--एक बार स्वेच्छया विचरण करने वाले देवर्षि नारद ने पिता हिमालय के निकट खड़ी कन्या पार्वती को देखकर उन्हें बतलाया कि यह शिवजी की वामाङ्गिनी बनेगी ॥५०॥

गुरुः प्रगल्भेऽपि वयस्यतोऽस्यास्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः ।
ऋते कृशानोर्नहि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ॥५१॥

अन्वयः—अतः गुरुः अस्याः प्रगल्भे वयसि अपि निवृत्तान्यवराभिलाषः (सन्) तस्थौ । हि मन्त्रपूतं हव्यं कृशानोः ऋते अपराणि तेजांसि न अर्हन्ति ।

व्याख्या—गुरुरिति । अतः=अस्मात्कारणात् । गुरुः=पिता हिमालयः ('गुरुर्गीष्पतिः-पितरौ' इत्यमरः) । अस्याः=एतस्याः पार्वत्याः । प्रगल्भे=प्रौढे । वयसि=अवस्थायाम् ('खण्डबाल्यादिनोर्वयः' इत्यमरः) । अपि । निवृत्तान्यवराभिलाषः--निवृत्ता=दूरीकृता, अन्यवरस्य=अपरपत्यन्वेषणस्य, अभिलाषा=कामना, येन सः । सन्, तस्थौ=स्थितवान् । हि=यतः । मन्त्रपूतम्-मन्त्रैः पूतं मन्त्रपूतम्=मन्त्रसंस्कृतम् । हव्यम्=हवनसामग्रीम् आज्यादिकम् । कृशानोः=अग्नेः ('कृशानुः पावकोऽनलः' इत्यमरः) । ऋते=विना ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपराणि = अन्यानि । तेजांसि=सूर्यचन्द्रप्रभृतीनि । न अर्हन्ति = न भजन्ति । अत्रार्थान्तरन्यासालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—ऐतद् विचार्य हिमालयः पार्वत्याः प्रौढावस्थायामपि अन्यवरान्वेषणेच्छा न चकार । यतः मन्त्रसंस्कृतं हव्यं वह्निना विना अन्यानि तेजांसि न भजन्ति ।

हिन्दी—अतएव पिता हिमालय भी पार्वती की प्रगल्भ अवस्था हो जाने पर भी अन्य वर खोजने की अभिलाषा से निवृत्त बने रहे । क्योंकि मन्त्रों द्वारा पवित्र हव्य अग्नि के सिवाय अन्य सूर्य-चन्द्रादि ग्रहण करने की योग्यता नहीं रखते हैं ।।५१।।

अयाचितारं न हि देवदेवमद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक ।
अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे ।।५२।।

अन्वयः—अद्रिः अयाचितारं देवदेवं सुतां ग्राहयितुं न शशाक । साधुः अभ्यर्थनाभङ्गभयेन इष्टे अपि अर्थे माध्यस्थ्यम् अवलम्बते ।

व्याख्या—अयाचितारमिति । अद्रिः=पर्वतो हिमालयः । अयाचितारम्=याचत इति याचिता, न याचिता अयाचिता, तम् = अयाचमानम्, देवदेवं = देवाधिदेवं हरम् । सुताम् = दुहितरम् पार्वतीम् । ग्राहयितुम् = स्वीकारयितुम् । न शशाक=नैव समर्थो बभूव । यतः साधुः = सत्पुरुषः । अभ्यर्थनाभङ्गभयेन–अभ्यर्थनायाः भङ्गः, तस्य भयेन = प्रार्थनाभंगभीत्या ('भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः) । इष्टे = वाञ्छिते अपि । अर्थे–विषये । माध्यस्थ्यम्=तात्स्थ्यम् । अवलम्बते=अवलम्बनं कुर्वन्ति । अत्रार्थान्तरन्यासालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—हिमालयोऽपि कन्यां पार्वतीम् अयाचमानं शिवं स्वीकारयितुं न शशाक । यतः सत्पुरुषाः प्रार्थनाविनाशभियाऽभीष्टविषयेऽपि उदासीनो भवन्ति ।

हिन्दी—हिमालय भी बिना याचना किये शिव से अपनी कन्या पार्वती के विवाह का प्रस्ताव नहीं कर सके; क्योंकि सत्पुरुष प्रार्थना भंग होने के भय से अभीष्ट विषय में भी उदासीन बन जाया करते हैं ।।५२।।

यदैव पूर्वे जनने शरीरं सा दक्षरोषात्सुदती ससर्ज ।
तदा प्रभृत्येव विमुक्तसङ्गः पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत् ।।५३।।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः–सुदती सा पूर्वे जनने यदा दक्षरोषात् शरीरं ससर्ज, तदा प्रभृति एव पशूनां पतिः विमुक्तसङ्गः (सन्) अपरिग्रहः अभूत् ।

व्याख्या—यदेति । सुदती–शोभनाः दन्ताः यस्याः सा=सुरदा । सा=असौ पार्वती । पूर्वे=पूर्वस्मिन् । जनने=जन्मनि ('ज्वलने' इति पाठान्तरे तु–दाक्षायणी-यत्वे योगाग्नौ ज्वलने) । यदा=यस्मिन् काले । दक्षरोषात्––दक्षस्य रोषः, तस्मात्––दक्षप्रजापतिकोपात् ('कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघा रुट्क्रुधौ स्त्रियाँ' इत्यमरः) । शरीरम्=देहम् । ससर्ज=तत्याज । तदाप्रभृति=तत्कालादारभ्य एव । पशूनां पतिः=शम्भुः । विमुक्तसङ्गः–विमुक्तः संगः येन सः=त्यक्तविषया-सक्तिः (सन्) । अपरिग्रहः=अपत्नीकः । अभूत्=बभूव । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः––सुरदना नगराजकन्या पार्वती पूर्वजन्मनि जनके दक्षगृहे यदा कोपात्स्वदेहं परित्यक्तवती, तत एव भगवान् भूतनाथः शिवः त्यक्तविषयः सन्नपत्नीकोऽभूत् ।

हिन्दी–सुन्दर दाँतों वाली उस पार्वती ने पूर्वजन्म में जब पिता दक्ष के यज्ञ में क्रोध में आकर अपने शरीर का परित्याग किया, तभी से पशुपति भगवान् शिव विषयासक्ति का परित्याग कर पत्नीरहित जीवन व्यतीत कर रहे थे ।। ५३ ।।

स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदारु ।
प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि किञ्चित्क्वणत्किन्नरमध्युवास ।। ४५ ।।

अन्वयः—कृत्तिवासा यतात्मा सः तपसे गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदारु मृग-नाभिगन्धि क्वणत्किन्नरम् किञ्चित् हिमाद्रेः प्रस्थम् अध्युवास ।

व्याख्या—स इति । कृत्तिवासाः—कृत्तिः वासः यस्य सः=चर्माम्बरः ('अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री' इत्यमरः) । यतात्मा-यतः आत्मा यस्य सः=स्थिरचेताः । सः=असौ पशुपतिः । तपसे=तपश्चरणाय । गंगाप्रवाहोक्षित-देवदारु—प्रवहणं प्रवाहः, गंगायाः प्रवाह इति गंगाप्रवाहः, तेनोक्षिताः देवदा-रवो यस्मिन् तत्=त्रिपथगाधारासंसिक्तदेवदारुयुतम् । मृगनाभिगन्धि–मृगनाभि-गन्धो यस्मिन् तत्=कस्तूरीसुरभियुक्तम् ('मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी च ।' इत्यमरः) । क्वणत्किन्नरम्–क्वणन्तः किन्नराः यस्मिन्, तत्=गायत्किम्पु-रुषम् । किञ्चित्=किमपि । हिमाद्रेः=हिमालयस्य । प्रस्थम्=सानुम्('प्रस्थोऽस्त्री सानुमानयोः' इत्यमरः) अध्युवास=अध्यवसत् । उपजातिवृत्तम् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरलार्थः—चर्माम्बरः स्थिरचेताः शिवः तपश्चरणाय भागीरथीप्रवाह-सिक्तदेवदारुयुतं, कस्तूरीसुगन्धपूर्णं गायत्किन्नरं किमपि हिमालयप्रस्थमवसत् ।

हिन्दी—गजचर्माधारी स्थिरचेता शिवजी तपस्या करने के लिए गंगा प्रवाह से सिक्त देवदारुवृक्षों वाले, कस्तूरी-गन्धयुक्त तथा जहाँ किन्नर निरन्तर गायन करते रहते हैं ऐसे हिमालय के किसी शिखर पर निवास करते थे ।५४।

गणाः नमेरुप्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः ।
मनःशिलाविच्छुरिता निषेदुः सैलेयनद्धेषु सिलातलेषु ॥ ५५ ॥

अन्वय—गणाः नमेरुप्रसवावतंसाः स्पर्शवतीः भूर्जत्वचः दधानाः मनः-शिलाविच्छुरिताः (सन्तः) शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु निषेदुः ।

व्याख्या—गणा इति । गणाः=प्रमथगणाः । नमेरुप्रसवावतंसाः-नमेरूणां प्रसवाः अवतंसाः येषां ते सुरपुन्नागपुष्पशेखराः ('नमेरुः सुरपुन्नागः' इति विश्वः) । स्पर्शवतीः=सुखस्पर्शाः । भूर्जत्वचः=भूर्जवल्कलानि । दधानाः= धारयन्तः । मनःशिलाविच्छुरिताः-मनःशिलाभिः विच्छुरिताः=मनोगुप्तानु-लिप्ताः (मनःशिलाः मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका' इत्यमरः) । (सन्तः) शैलेयनद्धेषु=शिलाजतुलिप्तेषु । शिलातलेषु=पाषाणतलेषु । निषेदुः= उपविविशुः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—नन्दीप्रभृतिशिवगणाः सुरपुन्नागशेखराः सुखस्पर्शाः भूर्जत्वचः धारयन्तः मनोगुप्तानुलिप्ताः सन्तः शिलाजतुलिप्तेषु पाषाणतलेषु उपविविशुः ।

हिन्दी—नन्दी आदि शिवजी के गण उस हिमालय प्रस्थ पर सुरपुन्नाग के पुष्पों को धारण कर सुखद स्पर्श वाले (अत्यन्त मुलायम) भूर्ज-वल्कल धारण किए हुए शिलाजीत का लेप किए हुए शिलाजीत से लिप्त पत्थरों की चट्टानों पर बैठे ॥ ५५ ॥

तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन्दर्पकलः ककुद्मान् ।
दृष्टाः कथञ्चिद् गवयैर्विविग्नैरसोढसिंहध्वनिरुन्ननाद ॥ ५६ ॥

अन्वयः—तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलः विविग्नैः गवयैः कथंचित् दृष्टः ककुद्मान् असोढसिंहध्वनिः (सन्) उन्ननाद ।

व्याख्या—तुषारेति । तुषारसंघातशिलाः-तुषाराणां संघातास्तुषारसंघा-तास्त एव शिलास्ताः=हिमघनप्रस्तरान् । खुराग्रैः-खुराणामग्रैः=शफाग्र-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भागैः ('शफं क्लीबे खुरः पुमान्' इत्यमरः)। समुल्लिखन् = विदारयन्। दर्पकलः — दर्पेण कलः दर्पकलः = दर्पमधुरध्वनिः। विविग्नैः = व्याकुलैः। गवयैः = गोसदृशपशुविशेषैः ('गवयस्तु गवानूक' इति त्रिकाण्डशेषकोषः)। कथंचित् = केनापि प्रकारेण। दृष्टः = अवलोकितः। ककुद्मान् = वृषभः ('प्राधान्ये रागलिङ्गं च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः)। असोढसिंहध्वनिः — सह्यत इति सोढः, न सोढः असोढः सिंहानां ध्वनिरिति = असह्यमृगेन्द्रनादः सन् ('सिंहो मृगेन्द्रः पंचास्यः हर्यक्षः केसरी हरिः' इत्यमरः)। उन्ननाद उत् = उच्चैः, ननाद = जगर्ज। अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

सरलार्थः — हिमघनप्रस्तरान् खुराग्रभागैर्विदारयन् गर्वमधुरध्वनिराकुलैः गवयैः कष्टेनावलोकितः वृषभः असह्यसिंहध्वनिः सन् जगर्ज।

हिन्दी — घनी हिम चट्टानों को खुरों के अग्रभाग से विदीर्ण करता हुआ शिवजी का वाहन नन्दी अभिमान से मधुर ध्वनि करता हुआ व्याकुल गवयों (वन-गैयों) से कष्ट से अवलोकित असह्य सिंहगर्जन करता हुआ दहाड़ा (जोर से चिल्लाया) ॥५६॥

तत्राऽग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः।
स्वयं विधाता तपसः फलानां केनाऽपि कामेन तपश्चकार ॥५७॥

अन्वयः — तपसः फलानां स्वयम् एव विधाता अष्टमूर्तिः तत्र स्वं मूर्त्यन्तरं समित्समिद्धम् अग्निम् आधाय केनापि कामेन तपः चकार।

व्याख्या — तत्रेति। तपसः = तपश्चर्यायाः। फलानां = परिणामानाम्। स्वम् = आत्मना एव। विधाता = स्रष्टा। अष्टमूर्त्तिः — अष्टौ मूर्तयो यस्य सः = अष्टकायः परमेश्वरः तत्र = तस्मिन् प्रस्थे। मूर्त्यन्तरम् = मूर्तिविशेषम्। समित्समिद्धं — सम्यगिद्धः समिद्ध, समिद्धिः समिद्धस्तम् = काष्ठदीपितम्। अग्निम् = वह्निम् ('अग्निर्वैश्वानरो वह्निः वीतिहोत्रो धनञ्जयः' इत्यमरः)। आधाय = स्थापयित्वा। केनापि = अपूर्वेण। कामेन = कामनया। तपः = तपश्चरणम्। चकार = कृतवान्।

सरलार्थः — तपःपरिणामरूपाणां स्वयमेव प्रदाता शिवस्तस्मिन् प्रस्थे मूर्तिविशेषं काष्ठदीपितमनलं स्थापयित्वाऽदभुतकामनया तपोऽकरोत्।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी—तपस्या के देवत्वादि फलों के दाता स्वयम् अष्टमूर्ति भगवान् शिव उस शिखर पर मूर्तिविशिष्ट अग्निदेव को काष्ठदीपित स्थापित कर किसी अद्भुत कामना से तपस्या करने लगे ॥५७॥

अनर्घ्यमर्घ्येण तमद्रिनाथः स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा ।
आराधनायाऽस्य सखीसमेतां समादिदेश प्रयतां तनूजाम् ॥५८॥

अन्वयः—अद्रिनाथः अनर्घ्यं स्वर्गौकसाम् अर्चितम् अर्घ्येण अर्चयित्वा अस्य समाराधनाय सखीसमेतां तनूजां प्रयतां समादिदेश ।

व्याख्या—अनर्घ्यमिति । अद्रिनाथः—अद्रीणां नाथः पर्वतेश्वरः हिमालयः । अनर्घ्यम्=अमूल्यम् । स्वर्गौकसाम्—स्वर्गम् ओको येषां ते, तेषाम्=देवानाम् ('स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः' इति अमरः) । अर्चितम्=पूजितम् । तम् अर्घ्येण=अर्घ्यदानेन । अर्चयित्वा=पूजयित्वा, सत्कृत्य । अस्य=एतस्य शिवस्य । समाराधनाय=सेवनाय । सखीसमेताम्—सखीभिः समेता, ताम्=आलिसहिताम् । तनूजाम्=सुताम् । प्रयताम्=नियताम् । समादिदेश=आदिष्टवान् ।

सरलार्थः—पर्वतेश्वरो हिमालयोऽतिदुर्लभं देवपूजनमर्घ्यदानेन कृत्वाऽस्य शिवस्य समाराधनाय आलिभिः सहितां नियतां स्वसुतामुमामादिष्टवान् ।

हिन्दी—पर्वतराज हिमालय ने दुर्लभ देवताओं के पूजनीय शिवजी को अर्घ्यदान विधि से पूजन कर उनकी आराधना करने के लिए सखियों सहित पुत्री पार्वती को आदेश दिया ॥५८॥

प्रत्यर्थिभूतामपि तां समाधेः शुश्रूषमाणां गिरिशोऽनुमेने ।
विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥५९॥

अन्वयः—गिरिशः समाधेः प्रत्यर्थिभूताम् अपि शुश्रूषमाणां ताम् अनुमेने । विकारहेतौ सति येषां चेतांसि न विक्रियन्ते, ते एव धीराः ।

व्याख्या—प्रत्यर्थिभूतामिति । गिरिशः=शङ्करः । समाधेः=अवधानस्य ('समाधिर्ध्यानतीवाकनियमेषु समर्थने' इति विश्वः) । प्रत्यर्थिभूताम्=प्रतिपक्षभूताम् अपि । शुश्रूषमाणाम्=सेवमानाम् । ताम्=पार्वतीम् । अनुमेने=अङ्गीकृतवान् । विकारहेतौ सति—विकारस्य हेतुस्तस्मिन्=प्रकृतिविरुद्धकारणे सति । येषां=यज्जनानाम् । चेतांसि=मनांसि । न विक्रियन्ते=विकारं नैव गच्छन्ति ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ते=जनाः एव । धीराः=धैर्यवन्तः ('धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः') इत्यमरः । भवन्तीति । अत्रार्थान्तरन्यासालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सरलार्थः—भगवान् शिवः ध्यानस्य प्रतिपक्षभूतामपि सेदमानां पार्वतीमङ्गीकृतवान् (यतः) चित्तविकारणे सति येषां पुरुषाणां मनांसि विकृतिं नैव गच्छन्ति, त एव मनीषिणः भवन्तीति ।

हिन्दी—भगवान् शंकर ने समाधि में विक्षेप डालने वाली सेवा कर रही उस पार्वती को अंगीकार कर लिया, क्योंकि चित्त में विकार उत्पन्न करने वाले कारणों के होने पर भी जिन पुरुषों के चित्त विकृत नहीं होते हैं वे ही धीर पुरुष होते हैं ॥५९॥

अवचितबलिपुष्पा वेदिसंमार्गदक्षा
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री ।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥६०॥

अन्वयः—सुकेशी सा अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा नियमविधिजलानां बर्हिषां च उपनेत्री तच्छिरश्चन्द्रपादैः नियमितपरिखेदा सती प्रत्यहं गिरिशम् उपचचार ।

व्याख्या—अवचितेति । सुकेशी—शोभनाः केशाः अस्या इति सुकेशी=सुकुन्तला ('चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः) । सा=पार्वती । अवचितबलिपुष्पा—अवचितानि बल्यर्थं पुष्पाणि यया सा=लूनपूजाप्रसूना । वेदिसम्मार्गदक्षा—वेदेः सम्मार्गः, तस्मिन् दक्षा=वेदिकासम्मार्जनकुशला ('वेदिः परिष्कृता भूमिः' इत्यमरः) । नियमविधिजलानाम्—नियमस्य विधिः नियमविधिस्तस्य जलानि, तेषाम्=नित्यकर्मानुष्ठानवारिणाम् ('नियमस्तु स यत्कर्म नित्यमागन्तुसाधनम् ।' इत्यमरः) । बर्हिषाम्=कुशानाम् ('बर्हिर्नाकुशशुष्मणोः' इति त्रिकाण्डशेषकोषः) । च । उपनेत्री—उपनयतीत्युपनेत्री=आनेत्री सती । तच्छिरश्चन्द्रपादैः—तस्य शिरः तच्छिरः, तस्मिन् चन्द्रस्तस्य पादास्तैः=शिवशिरःस्थविधुकिरणैः ('पादोरश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः' इत्यमरः) । नियमितपरिखेदा—नियमितः परिखेदो यस्याः सा=नियमितपरिश्रमा सती । प्रत्यहम्—अहः अह इति=प्रतिदिनम् । गिरिशम्=

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिवम् । उपचचार=शुश्रूषां चक्रे । मालिनीवृत्तम् । तल्लक्षणं यथा–ननमय-ययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

सरलार्थः—सुकुन्तला पार्वती पूजार्थं पुष्पाहरणेन नियमवेदिकासम्मार्जनैः नित्यकर्मजलानयनेन कुशानयनेन च शिवशिरश्चन्द्रकिरणनिवर्तितश्रमा सती प्रत्यहं शुश्रूषां चकार ।

हिन्दी—सुन्दर केशोंवाली पार्वती पूजाहेतु पुष्प लाकर वेदी को साफ-सुथरा कर, नित्यकर्म के लिए जल तथा कुशायें लाकर शिवजी के शिर पर स्थित चन्द्रकिरणों द्वारा परिश्रम को दूर करती हुई नित्य शिवजी की शुश्रूषा करने लगी ॥६०॥

इति 'सुधा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्यया संवलित-कुमारसम्भवे

प्रथमः सर्गः समाप्तः ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परीक्षोपयोगी छात्रहितकारी विशिष्ट प्रकाशन

मेघदूतरहस्यम्। (प्रश्नोत्तरी) सन्दर्भ-प्रसङ्ग सहित सान्वय व्याख्या
साहित्यदर्पणादर्शः। साहित्यदर्पणस्थ-प्रष्टव्यस्थलीय-प्रश्नोत्तरी
मृच्छकटिकदर्पणः। प्रश्नोत्तरी। डॉ. जमुना पाठक
ध्वन्यालोकदर्पणम्। ध्वन्यालोकस्थ-अनुभूत-प्रष्टव्यप्रश्नोत्तरी
स्वरवैदिकप्रश्नोत्तरी। सिद्धान्तकौमुदीय स्वरवैदिकप्रकरण-प्रश्नोत्तरी
परमलघुकला। परमलघुमञ्जूषा प्रष्टव्यस्थलीय प्रश्नोत्तरी
महाभाष्यप्रकाशः। नवाह्निकमहाभाष्य-प्रष्टव्य-प्रश्नोत्तरी
मुक्तावली-तत्त्वालोकः। मुक्तावली-प्रष्टव्यस्थलीय-प्रश्नोत्तरी
सिद्धान्तकौमुदी-सोत्तराप्रश्नावली। १-४ भाग प्रश्नोत्तरी। पं. रामचन्द्र झा
सोत्तरा प्रथमा-प्रश्नावली। लघुकौमुदी-प्रष्टव्य-प्रश्नोत्तरी। पं. रामचन्द्र झा
रघुवंशप्रश्नोत्तरी। सन्दर्भ-प्रसङ्ग-सहित सान्वय प्रश्नोत्तरी। १-३ सर्ग
उत्तररामचरितरहस्यम्। (प्रश्नोत्तरी) डॉ. जमुना पाठक
रूपचन्द्रिका। सर्वाधिक धातुशब्दरूपसंग्रह। पं. रामचन्द्र झा
धातुरूपावली। प्रष्टव्यधातुरूप-संग्रह। पं. रामचन्द्र झा
शब्दरूपावली। प्रष्टव्यशब्दरूप-संग्रह। पं. रामचन्द्र झा
स्वप्नवासवदत्तम्। संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। डॉ. बालगोविन्द झा
रत्नावलीनाटिका। संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। डॉ. बालगोविन्द झा
अविमारकम्। संस्कृत-हिन्दी सान्वय व्याख्या। डॉ. बालगोविन्द झा
वेणीसंहारनाटकम्। 'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। डॉ. बालगोविन्द झा
विक्रमोर्वशीयम्। संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र
कर्पूरमञ्जरी। 'सुधा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। परमेश्वरदीन पाण्डेय
मृच्छकटिकम्। 'भावप्रकाशिका' संस्कृत-हिन्दी टीका। डॉ. जयशङ्करलाल त्रिपाठी
अभिषेकनाटकम्। संस्कृत-हिन्दी 'शशिप्रभा' व्याख्या। डॉ. जमुना पाठक

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन, गोलघर (मैदागिन) के पास,
पोस्ट बॉक्स नं० १००८, वाराणसी-२२१ ००१ (भारत)
फोन : ३३३४५८ (आफिस), ३३४०३२ एवं ३३५०२० (आवास)